सिद्ध योग

संस्थापक संरक्षक एवं सम्पादक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

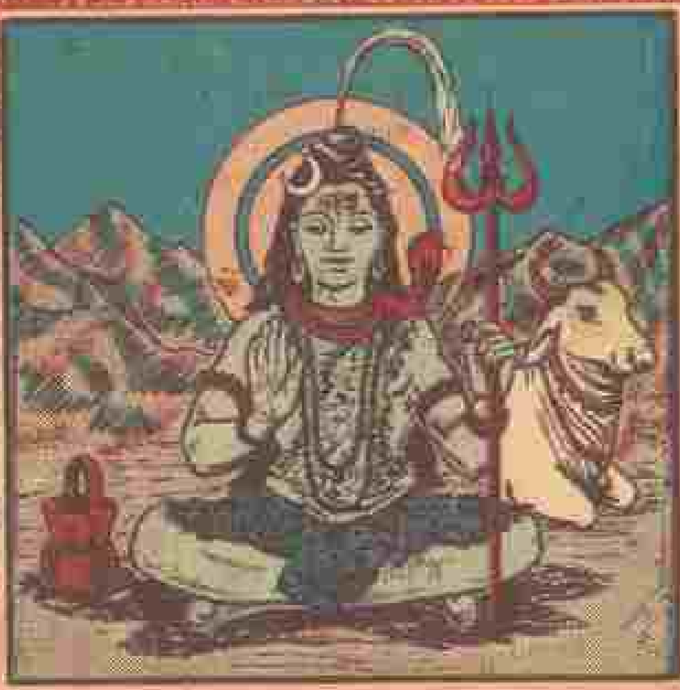

जुलाई १९७७
अंक ८—अंक ४

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
बंबई . आगरा

प्रकाशक

इस अंक में—

क्रम संख्या लेख	लेखक	पृष्ठ
१. हृद्धिविभुवनमपि बाह्य तनुते	....	१
२. अन्तर्मुखता का साधन योग (हमारा विशेष लेख)	योगयोगेश्वर भगवान श्री चन्द्रमोहनजी महाराज	२
३. योगाभ्यासी श्री माणिकचन्द स्मरण	श्री गुरुदेव जी द्वारा लिखित	४
४. योग से ही कैवल्य (मुक्ति) लाभ	स्व० श्री रामसुमेर उपाध्याय	१३
५. क्रिया योग	श्री गिरीशदेव वर्मा	२०
६. रामायण में योग	श्री अज्ञात	२३
७. सुन्दर शोभा सद्गुरु की (कविता)	माता – द्रौपदीदेवी	२७
८. विज्ञान और योग	लेखक—सुभाष किरपेकर अनुवादक—युगलकिशोर पस्तोर	२८
९. श्री दादूदयाल जी	श्री माणिकचन्द उमरवैश्य	२९
१०. आश्रम समाचार	हम रे प्रतिनिधि द्वारा	३८
११. हृदय-रोगों से कैसे बचें	श्री पारसचन्द सरावगी	४२
१२. शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्	श्री डा० विजयसिंह	४४
१३. पत्रम् पुष्पम् फलम् तोयम्	संकलित	४८
१४. साधना में आहार और निद्रा	टाइटिल	३
१५. स्वधर्म का निश्चय कैसे करें	टाइटिल	४

संयुक्त सम्पादक

दिव्य

फोन ६३१६०

वार्षिक मूल्य १५ रु०, एक प्रति १'५० पैसे मात्र

सिद्ध योग

वर्ष १०
अङ्क ४

जौलाई
१९७७

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुखं न विशतो, मुक्तिं प्राप्नोति सद्यः।
तत्त्वान्यर्थात् बहुविधदन् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः'॥

दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म तनुते

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंस्कारजनितं।
तदा दृष्टं नारीमयमिदमशेषं जगदपि॥
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनजुषां।
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते॥

अर्थात्

पहले जिस अवस्था में कामदेवरूप तिमिर नाम के नेत्र रोग की व्याप्ति से विवेक नष्ट होकर सारा संसार स्त्रीमय दिखाई देता था। अब इस समय तिमिररूप नेत्र रोग को दूर करने में समर्थ तत्त्वज्ञानरूप अञ्जन को लगाने वाले हम लोगों की दृष्टि त्रिभुवन को ब्रह्ममय समझती है।

हमारा विशेष लेख—

अन्तर्मुखता का साधन मौन

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

अन्तर्विज्ञान के वेत्ता हमारे ऋषि-मुनियों ने अपने अनुभवों के आधार पर लिखे अपने सद्ग्रन्थों में अपनी विविध प्रकार की साधनाओं का वर्णन किया है। सभी साधनाओं का ध्येय एक ही है कि साधक येन-केन प्रकारेण अन्तर्जगत में प्रवेश करे और वहाँ के अध्यात्म दृश्यों को देखकर बाह्य जगत के सम्बन्ध को तोड़ ले। कठोपनिषद् के तृतीय वल्ली में नचिकेता को उपदेश देते हुए यमराज ने बिल्कुल सीधे और स्पष्ट शब्दों में यह आदेश दिया है—

पराञ्चिखानि व्यतृणत् स्वयंभूः,
तस्मात्पराङ् पश्यतिनान्तरात्मन् ।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत्,
आवृत्त चक्षुः अमृतत्वमिच्छन् ॥

अर्थात् परमात्मा ने हमारी इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है, इसलिए वे बाह्य-जगत में ही प्रवृत्त रहती हैं, अन्तर्जगत में प्रवेश नहीं करतीं। अन्तर्जगत में प्रवेश करने की इच्छा वाला कोई विरला साधक इनको अन्तर्जगत की ओर मोड़ करके ही उस प्रत्यक् आत्मा को देख पाता है। इसलिए अन्तर्जगत में प्रवेश की इच्छा करने वाले हमारे आचार्यों ने अपनी इन्द्रियों को अन्तर्मुखता की ओर झुका करके ही शान्ति धाम की ओर अमृतत्व को पा सके।

अखिलात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने—

मौनं चैवास्मि गुह्यानाम्

कह करके मौन की महत्ता का संकेत किया है। गुह्य शब्द का अर्थ है जो लोग आत्मनिधि को प्राप्त कर चुके हैं, वही छिपे हुए हैं, गुह्य हैं, गुप्त हैं। उन लोगों की स्थिति-समुत्थान करने की ओर मुझे दिखलाने वाली है।

हमारे शास्त्रों में दो प्रकार के सिद्धों का वर्णन मिलता है—एक तो वे लोग हैं जो स्वतः सिद्ध हैं। अर्थात् जो अनादिकाल से सिद्ध ही चले आते हैं। दूसरे वे हैं जिन्होंने साधना के बल पर सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। मौन भी अन्तर्मार्ग के साधकों की एक गुह्य साधना है जो उनके अन्तर्निधि की रक्षा करती है। हमारी अध्यात्म जगत की शक्ति

इन्द्रियों की बहिर्मुखता के द्वारा ही बाह्य-जगत में प्रसारित होती है। इन्द्रियों का वेग इतना प्रबल होता है जिसके लिए अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्णको अर्जुनको समझाते हुए यह शब्द कहने ही पड़े, कि—

> यततोह्यपि कौन्तेय,
> पुरुषस्य विपश्चितः।
> इन्द्रियाणि प्रमाथीनि,
> हरन्ति प्रसभं मनः॥

अर्थात् हे अर्जुन! बड़े-बड़े बुद्धिमान व्यक्ति अपने मन को सन्मार्ग में रखने का पूरा-पूरा प्रयत्न करते है, किन्तु इन्द्रियों का वेग इतना प्रबल है कि उन बुद्धिमान विद्वानों को भी पीस डालता है।

> तानि सर्वाणि संयम्य,
> युक्तासीतमत्परः।
> वशे हि यस्येन्द्रियाणि,
> तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

अर्थात् जो योगी उन सब पर नियन्त्रण करके मेरी उपासना करता है और शनैः-शनैः अभ्यास के बल से इन्द्रियों को वश में कर लेता है, वह प्रतिष्ठित बुद्धि वाला बन जाया करता है।

अतः बुद्धि के प्रतिष्ठान के लिए और वर्षों के लम्बे अभ्यास के द्वारा प्राप्त अन्तर्जगत के ऐश्वर्य की रक्षा के लिए साधक को चाहिए कि वह अपनी जिह्वा पर नियन्त्रण करे। मनुष्य के मन में यदि किसी के प्रति ईर्ष्या पैदा होती है तो वह अपने मन के उद्वेग को रोक नहीं पाता प्रत्युत कटु शब्दों का उच्चारण करके उसको अभिशाप दे डालता है, जिसका परिणाम यह निकलता है कि साधक की अपनी शक्ति का क्षय तो होता ही है, प्रत्युत दूसरे को भी भारी दण्ड मिल जाता है, जिससे वह अनेक प्रकार की यातनाओं को भोगता है। जिसके फलस्वरूप शाप के देने वाला स्वयं भी एक पापको पाना लेता है और इससे उसकी अन्तर्मोपासना में भारी अन्तराय उपस्थित हो जाता है। इसलिए साधक को चाहिए कि अपनी अन्तर्निधि की रक्षा के लिए मौन का अभ्यास करे एवं अपनी सहनशक्ति को बढ़ावे, जिससे उसका अन्तर्विकास भी उत्तरोत्तर बढ़ता चला जावे। उत्तम तो यही है कि योगी के मन में किसी भी प्रकार का विकार पैदा ही न हो। ऐसा तभी हो सकता है जब साधक एकान्त स्थान में रह करके तप, स्वाध्याय एवं योगाभ्यास के द्वारा अन्तः-प्रकाश को पैदा कर ले, जिससे मन में हर समय शान्ति, आनन्द एवं प्रफुल्लता बनी रहे, तभी उसके अन्दर मौन धारण करने की योग्यता भी आ सकती है अन्यथा मौन भी मिथ्याचार का रूप धारण कर लेगा। श्रीमद्-भगवद्गीता में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से ऐसे लोगों को मिथ्याचारी कहा

योगाभ्यासी श्री मानिकचन्द दलाल

[श्री गुरुदेव जी द्वारा लिखित]

योगयोगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के असंख्य पावन चरित्रों का वर्णन करना मेरे जैसे साधारण प्राणीके लिए उतना ही दुर्लभ है जितना कि छोटी-सी डोंगी के अवलम्बन से दुस्तर सागर को पार करना। अथवा उन परम कृपा-निकेतन श्री प्रभु जी के चरण-कमलों को हृदय में धारण करके उन्हीं की कृपा-शक्ति एवं प्रेरणा से निजानुभूति-रूप में यह छोटी-सी घटना जन-साधारण के हितार्थ लिखने का आयोजन कर रहा हूं। यद्यपि इस घोर कलिकाल में सहज श्रद्धा-विश्वास करने वाले प्राणी अति अल्प हैं, फिर भी श्रद्धालु, जिज्ञासु समुदाय के लिए यह चरित्र बड़ा ही प्रेरक एवं योग-मार्ग में श्रद्धा वृद्ध करने वाला सिद्ध हो सकता है।

अभी लगभग १४-१५ वर्ष की आयु में जब मैं अमृतसर में विद्याध्ययन किया करता था, मेरे गुरु-भाई ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी और श्रद्धेय श्री मुलकराज जी एक बार अमृतसर में आये। श्री गोपालानन्द जी के दर्शन इससे पूर्व मैं ऋषिकेश में अपने दीक्षा-काल में कर चुका था। अतः इस महा-

---

(पिछले पृष्ठ का शेष)

है जो कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण करके मन से उनके विषयोंका चिन्तन करते रहते हैं यथा—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य,
य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान विमूढात्मा,
मिथ्याचारः स उच्यते॥

इसलिए मनुष्य को मौन तो रहना चाहिए किन्तु उसको अभ्यासशील होना भी बहुत आवश्यक है। अभ्यासशील साधु अपनी जिह्वा पर कन्ट्रोल करके यदि मौन रहेगा तो उसका यह मौन भी उसकी अन्तर्मुखता का एक विशिष्ट साधन बन जायगा। उसकी अन्तः-निधि भी बढ़ती चली जायेगी एवं मौन वैज्ञानिक गुत्थियों के अर्थ को वह भली प्रकार समझ जायेगा। तब उसके मन में यह धारणा स्वाभाविक ही बन जायेगी :—

सर्वे भवन्तु सुखिनः,
सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,
मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

तुम्हारों के आगमन की सूचना पाकर मैं उनके दर्शनों को उत्सुक हुआ। वे दोनों महात्मा अमृतसर रेलवे-स्टेशन के समीप ही भागरमल की धर्मशाला में ठहरे हुए थे। मैं वहाँ पहुँचा और बड़े गुरु-भाई होने के नाते उन दोनों को प्रणाम करके बैठ गया। ब्रह्मचारीजी उस समय ध्यानस्थ थे। थोड़ी देर बाद मेरे सामने ही इस प्रकार कहते हुए वे ध्यान से उठे—हे प्रभो, हे करुणा-सागर, हे दीनबन्धु! आप ही हैं। इस प्रेम-भाव के आवेग में गीता के यही वाक्य बार-बार उनके मुखसे निकल रहे थे—

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो,
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव।

उन्हें प्रेम-विह्वल दशा में इस प्रकार बार-म्बार स्तुति करते हुए देखकर मैंने पूछा—भाई जी, क्या कारण है? आज आप भी प्रभु की बहुत स्तुति कर रहे हैं।

श्री ब्रह्मचारी जी का मुख-मण्डल उस समय आन्तरिक प्रेममय भावों से अत्यन्त शोभायुक्त एवं विलक्षण दिखाई दे रहा था। मेरी बात का कोई उत्तर न देकर वे पुनः ध्यानस्थ हो गये, किन्तु थोड़ी-थोड़ी देर बाद बीच-बीच में ज्योंही उनके नेत्र खुलते, मैं बार-म्बार पूर्व प्रश्न ही करता रहा और मन में सोचता था कि किसी भी प्रकार ब्रह्मचारीजी अपना आज का अनुभव तो बतला देवें। मेरे बारम्बार पूछने पर और मेरी तीव्र जिज्ञासा एवं प्रबल वेग देखकर ब्रह्मचारी मुस्कराये और हँसते हुए बोले—अरे भइया! अभी तुम बच्चे हो। तुमने अभी तक ऐसी बातें सुनी भी नहीं होंगी। मैं तुम्हें बता तो दूँ, परन्तु कह नहीं सकता कि तुम उस अद्भुत लीला को सत्य मान सकोगे या नहीं।

उनकी बतलाने की प्रवृत्ति देखकर मेरे मन में जानने का हठ और भी अधिक हो गया। अन्ततः ब्रह्मचारी जी मेरा अत्यधिक आग्रह देखकर कहने लगे—अरे भइया! उस परम कृपा-सागर की लीला क्या कहूँ? आज तो योगयोगेश्वर अगाध दयानिधि श्री प्रभु जी ने किसी तपेदिक के मरणासन्न रोगीके अत्यन्त कष्टप्रद रोग का संस्कार अपने शरीर पर आकर्षित किया है। अब तीन दिन और तीन रात्रि तक निरन्तर इस रोगको स्वयं कृपानाथ जी भोगेंगे और वह रोगी बिल्कुल रोगमुक्त होकर पूर्ण स्वस्थ हो जायेगा।

यह वृत्तान्त सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, यद्यपि मैं दीक्षित हो चुका था। योग-योगेश्वर श्री प्रभुजी की अनुपम कृपाओं का अनुभव मेरे मन को अवश्य था और मेरा मन शक्तिपात दीक्षा के महत्व को भी भलीभाँति समझ चुका था। किन्तु इस प्रकार के अद्भुत कार्य भी होने सम्भव हैं इस विषय का मुझे ज्ञान नहीं था। अतः मन सहसा विश्वास न कर सका और मैंने ब्रह्मचारी जी से निवेदन

किया—भाई जी ! यदि यह बात सत्य है तो मैं आश्रम में अपने आप जाकर देखना चाहता हूँ। ब्रह्मचारी जी ने कहा—प्रसन्नता से आओ और इन कृपानाथ की इस अनुपम कृपा को प्रत्यक्ष देखो।

ब्रह्मचारी जी के वचनों को सुनकर मेरे मन में श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में ऋषिकेश जाने की उमंग भर गई, परन्तु संस्कार-वशात् मैं दो दिन नहीं जा सका। तीसरे दिन शाम की गाड़ी से अमृतसर से चलकर अगले दिन प्रातः मैं ऋषीकेश पहुँचा था। आश्रम में प्रवेश करके देखा—सामने आराम कुर्सी पर गेरुवासी खासा कुर्ता ओढ़े हुए श्री प्रभुजी बैठे थे। उनका मुख-मण्डल प्रसन्न होते हुए भी क्लान्ति के स्पष्ट चिह्नों से युक्त था। उनके चरण-कमलों के समीप ही एक व्यक्ति बैठा हुआ था, जो बिल्कुल क्षीणकाय एवं तेजहीन मालूम पड़ता था। वह अस्थि पंजरावशेष-सा ही दिखाई देता था।

मैंने श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में साष्टांग प्रणाम करके विनम्र शब्दों में पूछने का साहस किया—हे दीनबन्धो ! आज आप उदास से कैसे हो रहे हैं ? श्री प्रभुजी ने अत्यन्त गम्भीर वाणी में उत्तर दिया—क्यों, कैसे हो रहे हैं ?

मैं तो दयानाथ जी की वाणी सुनकर चुप हो गया, किन्तु श्री प्रभुजी के पास बैठे उस क्षीणकाय व्यक्ति का कण्ठ भर आया और वह एकाएक रोने लगा। मैंने आश्चर्य में आकर उससे पूछा—भैया ! तुम कौन हो और किस कारण रो रहे हो ? इसी बीच में श्री प्रभुजी शान्त भाव से अत्यन्त मधुर वाणी में उसे सान्त्वना दे रहे थे—भाई ! रोते क्यों हो ? इस प्रकार के कार्य तो यहाँ होते ही रहते हैं। मैंने उस व्यक्ति से आग्रह करके पूछा—भाई ! सत्य बतलाओ। तुम्हारे इस प्रकार सहसा रो पड़ने का क्या कारण है ? उस व्यक्ति का नाम माणिकचन्द था और वह अमृतसर में ही सोने-चाँदी की दलाली करता था। माणिकचन्द ने बड़े विनम्र शब्दों में मुझसे कहा—भाई जी ! श्री प्रभुजी का शरीर जो आपको दुर्बल-सा दिखाई दे रहा है, इसका कारण मैं ही पापात्मा हूँ। मैं इन दीनबन्धु की दया का क्या बदला दे सकूँगा और क्या ही इन परम कृपालु की सेवा कर सकता हूँ ? ये करुणानिधि अकारण कृपालु हैं। दीनबन्धु हैं, अनाथों के नाथ हैं, शरणागतों के रक्षक हैं। यह कहकर माणिकचन्द ने जो आप-बीती मुझे सुनाई थी वह इस प्रकार है—

"मैं तपेदिक का इलाज कराने सोलन गया था और धर्मपुर पहाड़ पर रहकर चिकित्सा करा रहा था, परन्तु मुझे वहाँ कोई भी लाभ नहीं हो सका। अन्ततः डाक्टरों ने मेरे रोग को असाध्य घोषित करके कह दिया—अब तुम किसी भी प्रकार बच नहीं सकते। बस, अधिक से अधिक दस-पन्द्रह दिन के और मेह-

मान हो। धर्मपुर के डाक्टरों की यह राय सुनकर मेरा मन जीवन से बिल्कुल निराश हो गया। मेरी स्त्री भी परम दुःखी होकर सबके अन्तिम आश्रय भगवान को स्मरण करने लगी। अकस्मात् रात्रि में मेरी स्त्री को स्वप्न में भगवान श्रीकृष्ण जी के दर्शनों की अनुभूति हुई। उसे अनुभव हुआ कि भगवान कह रहे हैं—अपने पतिको ऋषिकेश ले जाओ, वहां पर एक पूर्ण योगिराज है, उनके साथ इसका संस्कार भी है। उनकी कृपा से इसका जीवन बच जायेगा।'

'भगवान की पवित्र प्रेरणा से मेरी स्त्री के मन में मुझे ऋषिकेश ले जाने का दृढ़ संकल्प बस गया। मेरे मन में भी विचार आया—ऋषिकेश ही चलें और कुछ न भी हुआ तो कम से कम गंगाजी का पवित्र तट तो अन्तिम समय मिल ही जायेगा। मेरी स्त्री बड़ी कठिनाई से मुझे ऋषिकेश तक ले आई, मेरी अवस्था मरणासन्न थी। बड़ी कठिनाई से मेरी पत्नी ने मुझे तांगे में डाला और आश्रम के द्वार पर किसी प्रकार मुझे उतरवा कर डाल दिया। उस समय श्री प्रभुजी भ्रमणार्थ गये हुए थे। उनके अनुपम चमत्कारों के विषय में सुनकर वह स्वाति-नक्षत्र की बूंद के लिए चातक के समान श्री प्रभुजी की प्रतीक्षा करने लगी। भ्रमण से लौटने पर श्री प्रभुजी ने मुझे दरवाजे पर पड़ा देखकर पूछा—यह कौन है, क्यों आया है, कहां से आया है? मेरी पत्नी ने सारा वृत्तान्त आदि से अन्त तक श्रीचरणों में निवेदन किया। मेरे असाध्य रोग की बात सुनकर बाहरी मर्यादा का पालन करते हुए श्री प्रभुजी ने भी उत्तर दे दिया—ऐसे रोगी का हम क्या कर सकते हैं? यह न कोई साधन कर सकता है और न यौगिक-क्रियायें करने की शक्ति ही इसमें शेष है। ऐसी दशा में औषधि-सेवन ही ठीक रहेगा। और कहीं ले जाकर इसका इलाज कराओ।'

'अनाथनाथ जी के ऐसे रूखे एवं दया-शून्य वचन सुनकर मेरी पत्नी का हृदय अत्यन्त दुःखी हुआ और उसके नेत्रों में जल भर आया। उसने अत्यन्त कातरवाणी से दीन-बन्धु से प्रार्थना की—हे प्रभो! अब संसार में आपके चरण-कमलों के अतिरिक्त हमारा कोई सहारा नहीं है। अब जो कुछ भी होगा, आपके चरण-कमलों में ही होगा। अब हम दूसरी जगह कहीं नहीं जायेंगे। हमारी पहुंच तो यहीं तक थी. इससे आगे और कहीं जाने की हमारी शक्ति नहीं है। उसके दीन वचनों को सुनकर दीनबन्धु जी के मन में कृपा की लहर आ गई। प्रसन्नता से बोले—अच्छा, अच्छा! बच जायेगा। फिर मेरी पत्नी से बोले—अपने पति से पूछ ले कि कौन-सी वस्तु खाने की रुचि है? मेरे मन में उस समय खटाई पड़ी, तेल तली, बैंगन की पकौड़ी खाने की इच्छा हुई। मेरी पत्नी ने मेरी यह

इच्छा श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में निवेदन कर दी। यद्यपि तेल की तली यह पकौड़ी उस समय मेरे लिए महान् कुपथ्य थी, फिर भी श्री प्रभुजी ने पूर्ण प्रसन्नता से आज्ञा दी—यह जो कुछ भी खाना चाहता है, अवश्य इन्हें प्रेम से खिलाओ। श्री प्रभुजी का आदेश पाकर चकित-सी मेरी पत्नी तेल की तली वैसी पकौड़ी ले आई और मुझे खिला दी। उन्हें खाते ही मेरा शरीर चेतना शून्य हो गया। मेरी यह दशा देखकर मेरी पत्नी व्याकुल होकर रोने लगी। किन्तु उधर मेरे साथ इन कृपानिधिजी की कुछ और ही लीला हो रही थी। मुझे उसी बेहोशी में एक स्वप्न-सा दीखा—महान तेजमण्डल के साथ श्री प्रभु श्री मेरे समक्ष खड़े होकर कह रहे थे, माणिक-चन्द ! तू अब इस कष्ट को नहीं भोग सकता। यदि भोगेगा तो तीन दिन में ही त्रिलोक से बाहर हो जायेगा। अतः ला, अब तेरा यह कष्ट हम लेकर भुगताये देते हैं, मुख खोल। जब मैंने मुख खोला तो एक अद्भुत आश्चर्य हुआ। मेरे मुख से एक भयंकर काला-काला सा गोला निकलकर श्री प्रभु जी के मुख में प्रविष्ट हो गया। मेरी स्त्री क्या समझती कि वह अनाथों के नाथ परम कृपा-सागर उस समय मेरे ऊपर कैसी कृपा कर रहे थे? पर दुःख-कातर प्रभु ने मेरा रोग अपने शरीर पर ले लिया था। यह वह अज्ञानी कैसे जान सकती थी? अतः वह मेरे अनिष्ट की आशंका के कारण व्याकुलता में निरन्तर रोती रही।

उधर श्री प्रभुजी ने कमरे में एक निवाड़ का पलंग बिछवा लिया था। अकस्मात् पूर्ण रूप से नीरोग एवं स्वस्थ उनके शरीर में मेरे रोग के पूरे-पूरे लक्षण प्रकट हो गये। मेरे समान ही बुखार, खांसी एवं दस्त श्री प्रभुजी को ज्यों के त्यों लग गये। मेरी पत्नी का रोना सुनकर श्री दीनबन्धु जी ने उसके पास एक लड़का भेजा कि उससे जाकर कहना कि घबराने की कोई बात नहीं है। उसका पति एक घण्टे में राजी होकर बोलेगा। लेकिन अज्ञान के कारण वह इसको केवल मात्र साधारण आश्वासन ही समझी और पूर्ववत् व्याकुल होती रही। थोड़ी देर बाद मुझे चेतना हुई और मैंने स्वयं कहा—अरी तू रोती क्यों है? देख मेरे सारे रोगों को कृपानाथ श्री प्रभु जी स्वयं भोग रहे हैं। तू ऊपर चबूतरे पर जाकर देख तो, मेरा सारा कष्ट दीन-रक्षक ने ज्यों का त्यों अपने ऊपर ले लिया है। वे स्वयं मेरा रोग भुगतान कर रहे हैं और मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूँ। मेरी स्त्री ने जब उन कृपानिधि की ऐसी दशा देखी तो बड़े आश्चर्य में पड़ गई और प्रभु जी की इस अनुपम कृपा का स्मरण कर गद्गद् हो गई।

मेरे कष्ट को श्री प्रभुजी ने अपने तन पर निरन्तर तीन दिन तीन रात्रि भोगकर आज

ही समाप्त किया है और अब यह कृपानाथ जी घनघोर बादलों से मुक्त हुए निर्मल चन्द्रमा के समान शान्त भाव से हम लोगों के मध्य बैठे हैं। श्री प्रभुजी ने भगवान सदाशिव की भाँति मेरे रोग रूपी गरल का जो पान किया है, उसकी सन्निहित ज्योति उनके मुख-मण्डल पर शेष है।

यह सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर मुझे ब्रह्मचारी जी के वचनों का स्मरण हुआ। अब विश्वास न कर सकने का तो प्रश्न ही नहीं था। फिर भी मन में बड़ा आश्चर्य लगा कि दूसरे के कष्ट को इस प्रकार भी भोगा जा सकता है, जैसा कि माणिकचन्द दलाल के निमित्त भोगा था। मेरे सामने सपत्नीक माणिकचन्द दो मास के लगभग वहाँ रहे। वे लोग काली-कमली वालों के क्षेत्र में ठहरे हुए थे एवं प्रभु जी की आज्ञानुसार योग-साधन करने के लिए नित्य आश्रम आया करता था। श्री प्रभुजी उसको जीवन-तत्व साधन कराया करते थे। नैपाल हिमालय से लौटकर इस विशेष साधन को स्वयं श्री प्रभुजी ने अपने मन से प्रकट किया था। इसमें क्रमशः ९ क्रियायें हैं—

(१) सर्वोत्थान (२) स्कन्ध-संचालन (३) (३) पद-चालन (४) नाभि-चालन (५) जानु-प्रसार (६) बाल-मन्थन (७) बालक का ध्यान, (८) नाड़ी-चालन (९) उत्क्षेपण।

इन सब क्रियाओं के मध्य में इस जीवन तत्व साधना से सम्बन्ध रखने वाला एक प्राणायाम भी कराया करते थे। यह जीवन-तत्व साधन क्या है? और इसकी शरीर को स्वस्थ रखने में क्या उपयोगिता है? यह एक विस्तृत विषय है और वर्णित विषय के बाहर है। केवल इतना कथन ही यहाँ पर्याप्त है कि इस जीवन-तत्व साधन को नौ क्रियाओं से नियमपूर्वक करने से साधन करने वाले व्यक्ति के शरीर में एक दिव्य बल का संचार होता है और उसको वृकाग्नि उत्पन्न हो जाया करती है। इस समय मैंने श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में इस साधन का आश्चर्यजनक प्रभाव देखा है। उन कृपानाथ की कृपा से जीवन-तत्व साधन करने वाले व्यक्तियों का काया-कल्प ही जाया करता था। श्री प्रभु जी इस साधन को दिन में तीन बार कराया करते थे। इसको निर्विघ्न तीन माह तक करने के बाद वृकाग्नि उद्दीप्त हो जाती थी और साधन करने वाले नित्य १५-१५, २०-२० सेर तक कच्ची सब्जी, भिगोई हुई दाल या चने, फल, दूध इत्यादि खाकर पचा लिया करते थे। इस साधन को श्री प्रभु जी दो घण्टा सुबह, दो घण्टा दोपहर और दो घण्टा सन्ध्या समय कराते थे। बाल-मन्थन क्रिया के बाद इस जीवन-तत्व साधन में बालक का ध्यान कराया जाता है। साधन करने वालों को बच्चा

सम्मुख दिखाई देता है और वे स्वयं अपने आपको भी बालक समझकर शरीरमें बालकों जैसी स्फूर्ति एवं बल का अनुभव करते थे। शारीरिक स्वास्थ्य के साधन काल में होने वाला यही बालक का ध्यान बाद में ईश्वरीय दिव्य ध्यान में बदल कर आध्यात्मिक उन्नति का द्वार खोल देता है। श्री प्रभुजी के चरणों में अनेकों व्यक्ति रोग-मुक्त होकर स्वस्थ होने के लिए आये और शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति के अनन्तर वे लोग योग-मार्ग के सच्चे अभ्यासी साधक बन गये।

मानिकचन्द दलाल भी इसी प्रकार के साधकों में से एक थे। मेरे सामने मानिकचन्द अपनी पत्नी के साथ लगभग दो माह तक आश्रम में नित्य आते थे और श्री प्रभुजी की आज्ञा से जीवन-तत्त्व साधन करते थे। साधन करने में श्री प्रभुजी की अनुपम कृपा से कोई विघ्न न हुआ। साधन-काल में ६-७ सेर कच्ची सब्जी, ३-४ सेर दूध, २-३ सेर चने की भिगोई गई कच्ची दाल, घी, कई-कई सेर फल, दही इत्यादि नित्य खाते हुए मैंने उन्हें स्वयं देखा है। दो माह की नियमित साधना के बाद उनका स्वास्थ्य एक पूर्ण स्वस्थ युवक के समान बलवान् हो गया। शारीरिक स्वास्थ्य के इसी साधना-काल में मानिकचन्द की आत्मिक साधना भी श्री प्रभुजी की कृपा से चल पड़ी। श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में मानिकचन्द ने सपत्नीक योग-दीक्षा भी ग्रहण की और दोनों का यही ध्यान-योग में दिन-दूना, रात-चौगुना प्रवेश नित्य बढ़ता ही गया। शरीर भी उनका पूर्ण स्वस्थ और नीरोग हो गया। नियमित ध्यानाभ्यास से उनकी स्थिति उच्चतर होती गई।

संसार परिवर्तनशील है। यह पंच-भौतिक शरीर एक न एक दिन जाने के लिए ही संसार में आता है। लगभग दस-बारह वर्ष अपने अभ्यास में मग्न रहने के बाद एक दिन मानिकचन्द ने अपनी ध्यान-समाधिमें देखा—मेरा मृत्यु काल समीप आ गया है। श्री प्रभु जो उस समय स्थूलरूप में विराजमान थे। मानिकचन्द ने श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में निवेदन किया—प्रभो! मुझे कुछ ऐसा अनुभव हुआ है कि आठ-दस दिन में मेरा सम्बन्ध इस पंच-भौतिक शरीर से छूटने वाला है। क्या यह सत्य है? श्री प्रभुजी सुनकर हँसने लगे—घबराता क्यों है? यह तन तो नश्वर है ही, देर-सबेर इससे वियोग होना निश्चित ही है। सत्य विजयी तो तू है नहीं, जो इस तन को अधिक काल तक कायम रख सके। मानिकचन्द ने विनय की—हे प्रभो! आप सर्व-समर्थ हैं। कृपानिधान हैं। क्या कोई ऐसा उपाय हो सकता है कि मैं इस शरीर में कुछ समय तक और रह सकूँ? श्री प्रभुजी ने कहा—हां, केवल एक उपाय है वह यह कि हमारे पास आने के बाद से ध्यान-समाधि का निरन्तर अभ्यास करके दस-बारह वर्षों में तुमने जो

पुण्य-संचय किया है, उसका संकल्प कर दो। उसके फल से दस-पांच वर्ष और तुम्हारा यह शरीर तो बना रहेगा, परन्तु फिर तुम्हारी ध्यान-स्थिति समाप्त हो जायेगी। घर जाकर अपनी पत्नी और बाल-बच्चों के साथ विचार करके कल हमें आकर अपना निश्चय बता देना है।

मानिकचन्द अपने घर गया। उधर उसकी धर्म पत्नी शान्तदेवी ने ये सब बातें अपनी ध्यान-स्थिति में पहले ही देख ली थीं। उसने आते ही अपने पति को समझाना प्रारम्भ कर दिया। यह बहुत अच्छा सुयोग बना है। तुम्हारी संप्रज्ञात योग की बड़ी उच्चावस्था बन चुकी है और कल्याण घन आनन्दकन्द श्री प्रभुजी सशरीर सामने विराजमान हैं। घर में किसी का पैसा भी लेना-देना शेष नहीं है। बाल-बच्चे सब प्रकारसे सुखी हैं। भविष्य का समय कैसा होगा, कहा नहीं जा सकता? ध्यान-योग का पुण्य संकल्प कर देने के बाद पुनः ऐसी स्थिति नहीं बन सकेगी, ऐसा स्वयं श्री प्रभुजी के मुखारविन्द से निकला है। ध्यान-स्थिति नष्ट हो जाने पर फिर आप शरीर धारण करके भी क्या प्राप्त कर सकते हैं? आपकी इतनी उच्च ध्यान-स्थिति सम्मुख स्वयं कृपासागर श्री प्रभुजी का विराजमान होना, घर गृहस्थी के सब प्रकार के कार्यों का पूर्ण हो चुकना, इससे बढ़कर और कौनसा उत्तम उपाय होगा? यदि आनन्दकन्द श्री प्रभुजी कृपा करके मुझे भी ऐसा सुयोग दें, तो मैं कभी भूलकर भी पीछे नहीं हटूंगी? मेरे विचार में संसार के मोह पाश में फंसकर इस सुअवसर को छोड़ना उचित नहीं है। परम साध्वी अपनी धर्म पत्नी के ये हितकारी वचन मानिकचन्द के हृदय में घर कर गये और उसने इस सुअवसर को न खोने का निश्चय कर लिया।

अगले दिन मानिकचन्द ने श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में जाकर विनयपूर्वक निवेदन किया—हे दीनबन्धो! बड़े सौभाग्य से यह इतने आनन्द का दिन आया है। मेरे परम-पुण्य हैं, जो आपके दर्शन करते-करते ही मैं लीन हो जाऊँगा। कुछ दिन पूर्व ही कृपा करके आपने यह ज्ञान करा दिया, यह तो आपका बड़ा अनुग्रह है। अपने सारे काम समाप्त करके अब इस अल्पावधि को आपके पावन चरण-कमलों के ही चिन्तन में व्यतीत कर सकूं, ऐसी कृपा कीजिए। हे अनन्त ज्योति, करुणासागर! मैं आपकी शरण हूं। कृपा करके अपने चरणों में लीन कर लीजिये।

कृपानिधान श्री प्रभुजी ने मानिकचन्द के इन पवित्र एवं विनय भरे वचनों को सुनकर प्रसन्न मन से आज्ञा दी—अच्छा जाओ। एक सप्ताह तक पवित्र गंगाजल, तुलसीपत्र, दूध और फलादि सात्विक आहार का सेवन करते हुए शुद्ध ध्यान का अभ्यास करने में तत्पर

रहो। आठवें दिन तुम्हारा इस शरीर से सम्बन्ध छूटने वाला है। मानिकचन्द ने श्री प्रभुजी की आज्ञाको अक्षरशः पालन करते हुए उपरोक्त पक्षको उसी दिन से लेकर अहर्निश ध्यान-योग का अभ्यास किया। सब प्रकार के पारिवारिक सम्बन्धों को त्यागकर एकान्त कमरे में स्वच्छ वातावरण में स्वच्छ वस्त्र धारण करते हुए पूर्ण पवित्रता से इस कार्यक्रमको निभाया। आठवें दिन प्रातः अपनी पुण्यवती धर्म-पत्नी को आज्ञा दी—आज हमारा यह शरीर जाने वाला है। तुम पूर्ण प्रसन्नता के भूमि लीपकर मेरे लिए भू-शय्या का प्रबन्ध करो। उनकी आज्ञाकारिणी साध्वी पत्नी ने आज्ञा का पालन किया। मानिकचन्द श्री प्रभुजी के चरण-कमलों का ध्यान करते हुए भू-शैया पर बैठ गये और ध्यान-मग्न हो गये। उनके मुख-मण्डल पर अपूर्व शान्ति एवं तेज विराजमान था और वे पूर्णरूप से आनन्दित प्रतीत होते थे। इसी बीचमें उनके किसी कुटुम्बी ने आकर उनसे कहा—मानिकचन्द जी! सुना है आज आपकी परलोक यात्रा हो रही है। किन्तु आज पंचक लग गये हैं। अतः आज आपके शरीर का छूटना शेष कुटुम्ब के लिए बहुत अनिष्टकारी होगा। मानिकचन्द हँसे और बोले—अच्छा पंचक लग गये हैं। फिर अपने पुत्र हीरानन्द को बुलाकर आज्ञा दी—बेटा! तुम योगयोगेश्वर श्री प्रभुजी के चरणों में जाकर निवेदन करो कि पंचक लग जाने के कारण कुटुम्बीजन शंकित हैं। ऐसी दशा में आपकी क्या आज्ञा है? हीरानन्द ने श्री प्रभुजी के चरणोंमें पहुँचकर अपने पिताका सन्देश निवेदन किया। श्री प्रभुजी सुनकर हँसे और अपने गले से उतारकर एक पुष्प-माला प्रसाद के रूप में हीरानन्द को देकर बोले—जाओ, मानिकचन्द को यह पुष्प-माला पहना कर कहना कि प्रसन्नता से पंचक को निकाल दे। हीरानन्द ने आकर अपने पिता को माला पहना दी और श्री प्रभुजी की आज्ञा निवेदन कर दी। श्री प्रभुजी की ऐसी आज्ञा पाकर मानिकचन्द ५ दिन के लिए पुनः सचेत हो गये पूर्ववत् पवित्र वातावरण में अपना ध्यानाभ्यास करते रहे। अपने प्रयाण के दिन एकादशी को पुण्य वेला में उन त्रिभुवन वन्दित अनुपम चरण-कमलों में अनुपम योग विधि से मन को लीन करके अपने नश्वर तन को त्याग दिया। वहां उपस्थित मनुष्यों ने देखा—मानिकचन्द के शरीरसे एक तेज धारा निकल कर श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में लीन हो गई।

लाला मानिकचन्द की धर्म-पत्नी ज्ञानदेवी बड़े ही पवित्र एवं उच्च विचार वाली पतिपरायण साध्वी स्त्री हैं। उनके परिवार में प्रभुजी की कृपा से सुख-शान्ति है। ज्ञानदेवी पर अपने पतिदेव के समान हर समय प्रभुजी की कृपा बनी रहती है। इनकी ध्यान-स्थिति बड़ी उच्च एवं दिव्य है। उन कृपामय श्रीप्रभुजी की अनुपम कृपा के अमृत प्रसाद को प्राप्त करती हैं। ■ ■ ■

द्वितीय खण्ड (पूर्व प्रकाशित से आगे)—

योग से ही कैवल्य (मुक्ति) लाभ

स्व० श्री रामसुमेर उपाध्याय, कछवा, मिर्ज़ापुर

योग से ही कैवल्य (मुक्ति) की प्राप्ति होती है, अथवा नहीं होती, इसे सरलता से समझने के लिए योग की विशेषता का वर्णन शास्त्रीय वचनों द्वारा करते हैं।

नास्ति मायासमं पापं,
नास्ति योगात्परं बलम्।
नास्ति ज्ञानात्परोबंधु-
र्नाहङ्कारात्परो रिपुः॥

(घेरण्ड संहिता १/४)

अर्थात् माया (झूठ) के समान कोई पाप नहीं है और योग के परे कोई बल नहीं है और ज्ञान से परे कोई बन्धु (भाई) नहीं है और अहंकार के समान कोई वैरी नहीं है।

अभ्यासात्कादि वर्णानि,
यथा शास्त्राणि बोधयेत।
तथा योगं समासाद्य,
तत्त्वज्ञानं च लभ्यते॥

(घेरण्ड संहिता १/५)

अर्थात् जैसे अभ्यास करते-करते कारादि वर्ण (अक्षर) ज्ञान पड़ते हैं और उनके परिचय के पीछे अनेक प्रकार के शास्त्रों से बोध हो जाता है इसी प्रकार योग का अभ्यास करते-करते तत्त्व ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

सुकृतैर्दुष्कृतैः कार्यैर्जायते,
प्राणिनां घटः।
घटादुत्पद्यते कर्म,
घटीयंत्रं यथा भ्रमेत्॥
ऊर्ध्वाधो भ्रमतेयद्वत्,
घटीयंत्रंगवां वशात्।
तद्वत् कर्मवशाज्जीवो,
भ्रमते जन्ममृत्युभिः॥

(घेरण्ड संहिता १/६-७)

अर्थात् अच्छे और बुरे कर्म करने से प्राणियों का अंग (शरीर) उत्पन्न होता है और उस शरीर से फिर कर्म उत्पन्न होता है, जैसे कि घटीयन्त्र (घड़ी) उलट पलट कभी नीचे, कभी ऊँचे की ओर कलों के वश होकर घूमता है। इसी प्रकार उत्तम, मध्यम और अधम कर्मों के वश होकर वह जीव भी जन्म और मृत्यु के फेर में पड़ा घूमता है। जो फिर

किस उपाय से वह मिट सकता है। इस पर दृष्टान्त देते हैं :—

आमं कुम्भमिवाम्भस्थो,
जीर्यमाणः सदा घटः।
योगानलेन संदह्यघट,
शुद्धिं समाचरेत॥

(घेरण्ड संहिता १/८)

अर्थात् यह अंग (शरीर) ऐसा गलायमान है जैसे कच्चे घड़े में जल भरने से वह घड़ा गल जाता है, परन्तु जब उसको अग्नि में पका लेते हैं, तब वह घड़ा कभी नहीं गलता। इसी प्रकार इस शरीर को योगरूपी अग्नि से अच्छी तरह पका के पक्की करना चाहिए। मनुष्य शरीर पाने की सार्थकता इसी में है कि वह मोक्ष प्राप्त कर लेवे क्योंकि कहा गया है कि—

अत्र जन्म सहस्राणां,
सहस्रैरपि कोटिभीः।
कदाचिल्लभते जन्तु-
र्मानुष्यं पुण्य सञ्चयात्॥

अर्थात् इस संसार में जीवों के हजारों व करोड़ों जन्मों के बीतने पर कभी दैवयोग से अनेक जन्म के पुण्य इकट्ठे होने पर मनुष्य का जन्म होता है और वह मनुष्य शरीर क्या है? कहा गया है कि—

सोपान भूतं मोक्षस्य,
मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
यस्तारयति नात्मानं,
तस्मात्पापतरोऽत्रकः॥

यह मनुष्य का शरीर मोक्षपद पाने की सीढ़ी है और बहुत कठिनता से मिलता है। ऐसे शरीर को प्राप्त होकर जो आत्मा को इस संसार से उद्धार नहीं करता उससे अधिक और कौन पापी है। पहले कहा गया है कि सायुज्य मुक्ति प्राप्त्यर्थ प्रधान साधन योगमार्ग है। अतः वह योग क्या है? कैसा है? और कैसे प्राप्त होगा? इत्यादि बातों को समझ लेना आवश्यक है। योग का लक्षण पातंजल योग-दर्शन में—

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।

(१/२)

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध (सर्वथा रुक जाना) योग है। देखो भागवत—

न योगो नभसः पृष्ठे,
न भूमि न रसातले।
ऐक्यं जीवात्मनोराहु-
र्योगं योगविशारदः।

अर्थात् योग नभ, रसातल या भूमि पर प्रतिष्ठित होना मात्र नहीं, किन्तु जीवात्मा व परमात्मा का एक्य हो जाना ही योग है।

योग शिखोपनिषद्—

योऽपानप्राणयो रैक्यं,
स्वर जोरेतसोस्तथा।

सूर्या चन्द्रमसोर्योगो,
जीवात्म परमात्मनोः ॥
एवन्तु द्वन्द्व जालस्य,
संयोगो योग उच्यते ॥

अर्थात् अपान और प्राणवायु की एकता का नाम योग है, रजवीर्य की एकता योग है, सूर्य और चन्द्र की एकता होना योग है, जीवात्मा और परमात्मा का मिल जाना योग है। इस प्रकार इन दो-दो का एकत्व होना योग कहलाता है। इनकी एकता करने की जड़ प्राणायाम है। गोरक्ष :—

बिन्दुः शिवोरजः शक्ति-
श्चन्द्रो बिन्दूरजो रविः ॥
अनयोः सङ्गमादेव,
प्राप्यते परमं पदम् ॥

अर्थात् बिन्दु शिव, रज-शक्ति है और बिन्दु चन्द्र, रज-सूर्य है। इनको संयोग अर्थात् एकता होने से योग सिद्धि होकर मोक्ष को प्राप्त होता है। योग चूड़ामण्युपनिषद्—

प्राणपान वशो जीवो,
ह्यधश्चोर्ध्वञ्च धावति ।
वामदक्षिणमार्गाभ्यां,
चञ्चलत्वान्न दृश्यते ॥
रज्जुबद्धो यथा श्येनो,
गतोप्या कृष्यते पुनः ।
गुणबद्धस्तथा जीवः,
प्राणापानेन कर्षति ॥
अपानः कर्षति प्राणां-
प्राणोऽपानं कर्षति ।
ऊर्ध्वाधस्संस्थितावेतौ,
यो जानाति सयोगवित् ॥

अर्थात् प्राण और अपान वायु के वश में होकर यह जीव नीचे और ऊपर को दौड़ता है। बांये और दाहिने अर्थात् इड़ा, पिंगला मार्ग से चञ्चल होने के कारण दिखाई नहीं देता। जैसे रस्सीसे बँधा हुआ बाज (शिकारी पक्षी) उड़ गया हुआ भी फिर खिंच आता है। ऐसे गुणों (रज-सत-तम) से बँधा हुआ यह जीव प्राण अपानवायु द्वारा खिंच आता है। अपान-प्राण को और प्राण-अपान को खींचता है। इस प्रकार ऊपर और नीचे ठहरे हुए इन दोनों वायुओं के भेद को जो जानता है वही योग का जानने वाला है।

स्कन्दपुराणे—

आत्म ज्ञानेन मुक्तिः,
स्यात्तच्च योगादृतेनहि ।
सच योगीश्वरं काल-
मभ्यासादेव सिध्यति ॥

अर्थात् आत्म-ज्ञान से मुक्ति होती है, यह आत्म-ज्ञान योग के बिना नहीं हो सकता और वह योग चिरकाल के अभ्यास से ही सिद्ध होता है। क्योंकि कहा गया है कि—

जन्मान्तर शताभ्यस्ता,
मिथ्या संसार वासना ।
साचिराऽभ्यास योगेन,
विना न क्षीयते क्वचित ॥

तस्मात्सौम्य प्रयत्नेन,
पौरुषेण विवेकिना ।
भोगेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा,
त्रयमेव समाश्रय ॥

अर्थात् सैकड़ों जन्मोंसे झूठी संसारी ममता का अभ्यास हो रहा है इसलिए बिना बहुत काल योगाभ्यास किये वह कहीं नष्ट नहीं हो सकती है। हे सौम्य! इस हेतु से यत्न पुरुषार्थ (सामर्थ्य) और विचार इन तीनों ही के आश्रय होकर योग बल से वासनाओं को दूर ही से त्याग दे। किन्तु वासनाओं का त्यागना साधारण काम नहीं है और योग को जान लेना तथा योग की सिद्धियां प्राप्त कर लेना बिना गुरु की कृपा प्राप्त किये कुछ नहीं हो सकता। पुस्तकों को पढ़कर केवल अपने आप योग साधन करना व्यर्थ है। कहा है कि—

दुर्लभो विषय त्यागो,
दुर्लभं तत्त्व दर्शनम् ।
दुर्लभा सहजावस्था,
सद्गुरोः करुणां विना ॥

अर्थात् बिना श्रेष्ठ गुरु की कृपा इस लोक और परलोक के सुख रूपी विषय का त्यागना आत्मा का अनुभव और तुरीय अवस्था अर्थात् समाधि का लाभ ये दुर्लभ हैं। इसलिये सद्गुरु की सेवा में तत्पर हो योगाभ्यास करे कि जिससे अजर-अमर हो। क्योंकि योग से अतिरिक्त कोई मार्ग संसार रूपी समुद्र से पार होने का नहीं है। नासिकेत पुराणे—नासिकेत वचनम्—

अग्निहोत्र मिदं तात,
संसारस्य तु बन्धनम् ।
जन्ममृत्यु महामोहाः,
संसारे पततां ध्रुवम् ॥
योगाभ्यासात्पर नास्ति,
संसारार्णव तारणम् ।
ब्रह्माद्या देवताः सर्वे,
इन्द्राद्याः कश्यपात्मजाः ॥
सर्वे योगबलात्सिद्धा,
गतास्ते परमांगतिम् ॥

अर्थात् हे पिता! यह अग्निहोत्र संसार का बंधन है और इस महामोह संसार में निश्चय करके जन्म मृत्यु हुआ ही करते हैं, इससे योग से परे संसाररूपी समुद्र से पार होने का दूसरा उपाय नहीं। क्योंकि ब्रह्मा और कश्यप के पुत्र इन्द्रादिक सब देवता योग के प्रभाव से सिद्ध होकर श्रेष्ठ गति प्राप्त हो गये।

स्वर्गं गत्वा पुनर्जन्म,
संसारे भवति ध्रुवम् ।

योगाभ्यासात्परं नास्ति,
न भूतं न भविष्यति ॥
न कार्यमग्निहोत्रं तु,
योगाभ्यासं कुरु प्रभो ।

अर्थात् स्वर्ग को जाकर फिर संसार में निश्चय जन्म होता है । इससे योगसे परे अन्य साधन न हुआ न होगा, इसलिए हे प्रभो ! अग्निहोत्र को छोड़कर योगाभ्यास करो ।

कूर्म पुराणे—

योगाग्निर्दहति क्षिप्रम्
शेषं पापपञ्जरम् ।
प्रसन्नं जायते ज्ञानं,
ज्ञानाग्निर्वाण मृच्छति ॥

अर्थात् योगरूपी अग्नि शीघ्र ही पापों के समूह को दग्ध करता है और ज्ञान प्राप्त होता है ज्ञानसे मोक्ष होता है । अत्रि संहितायाम्—

योगात्सम्प्राप्यते ज्ञानं,
योगाद्धर्मस्य लक्षम् ।
योगः परं तपोज्ञेयस्त-
स्माद्युक्तः समभ्यसेत ॥

न च तीर्थेन तपसा न,
स्वाध्यायैर्न चेज्यया ।
शक्तिमन्तु द्विजाः शक्ता,
योगात्संप्राप्नुवन्तियाम् ॥

अर्थात् योग से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है, योग से ही धर्म प्राप्त होता है । योग ही परम तप है, इससे योग का सदा अभ्यास करना उचित है । योगाभ्यास करके जिस गति को प्राप्त होते है, वह उग्र तप करके और मन्त्रों के जप करके व यज्ञों के अनुष्ठान करने से भी उस गति को द्विज लोग प्राप्त होने में समर्थ नहीं होते ।

गरुड़ पुराणे—

भवतापेन तप्तानां योगो हि परमौषधम्

अर्थात् इस संसार में दुःख के दुःखियों को योग ही उत्तम औषधि है । किन्तु यह भी वहम है कि श्रुति कहती है कि—"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" । अर्थात् बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती । इन बातों के भ्रम को दूर करने के लिए पार्वती और शिव के संवाद को कहते हैं । योगबीजे-पार्वत्युवाच—

ज्ञानादेव हि मोक्षं च,
वदन्ति ज्ञानिनः सदा ।
स कथं सिद्धयोगेन योगः,
कि मोक्ष दो भवेत् ।

अर्थात् पार्वती ने कहा है कि—हे ईश्वर ! केवल ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है, दूसरे साधन से नहीं । ऐसे सब ज्ञानी लोग कहते है तो तुम सिद्ध हुए योग को ही किस प्रकार से मोक्ष का देने वाला कहते हो ।

ईश्वर उवाच—

ज्ञानेनैव हि मोक्षस्तु,
तेषां वाक्य तुनान्यथा ।
सर्वे वदन्ति खड्गेन जयो
भवति तर्हि किम् ॥
विना युद्धं न वीर्येण
कथं जयमवाप्नुयात् ।
तथा योगेन रहितं ज्ञानं
मोक्षाय नो भवेत् ॥

अर्थात् हे प्रिये ! केवल ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है, दूसरे साधन से नहीं । यद्यपि यह उनका कहना यथार्थ है तथापि जैसे सब लोग कहते हैं कि तलवार से शत्रु की पराजय होती है, तो इस तरह कहने से क्या हुआ ? बिना युद्ध और बल के केवल तलवार से कहीं जीत हो सकती है ? ऐसे ही बिना योगाभ्यास के केवल ज्ञान मुक्ति नहीं दे सकता है ।

योगबीजे—

ज्ञाननिष्ठो विरक्तोऽपि,
धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः ।
विना योगेन देवोऽपि,
न मोक्षं लभते प्रिये ॥

अर्थात् ज्ञानी हो, त्यागी व धर्मवान हो अथवा इन्द्रियों को जीतने वाला, परन्तु योग के बिना हे प्रिये ! देव भी मोक्ष को नहीं प्राप्त होता है । श्रुति कहती है कि—

अथ तद्दर्शनाभ्युपायो योगः—

अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वाधीरो हर्ष शोकौ जहाति ।

अर्थात् उस आत्मा के साक्षात्कार करने में एक योग ही उपाय है दूसरा नहीं । योगाभ्यास द्वारा ही उस आत्मदेव को जानकर श्रेष्ठ पुरुष हर्ष-शोक (जन्म-मरण) रूप संसार का परित्याग करते हैं ।

महाभारते—मोक्ष पर्व में भीष्मपितामह का वचन युधिष्ठिर के प्रति—

यथा चानिमिषाः स्थूला
जालंछित्वा पुनर्जलम् ।
प्रविशन्ति यथा योगा-
स्तत्पदं वीत कल्मषाः ॥

अर्थात् हे राजन् जिस प्रकार मोटा मगर-मच्छ बल से जाल को तोड़कर पुनः अपने निवास स्थान जल में चला जाता है, वैसे ही योगी लोग प्रारब्ध कर्मरूप जाल को योगरूप बल से छेदन करके सब पापों से रहित हुए पुनः अपने निवास-स्थान ब्रह्म में एकीभाव को प्राप्त होते हैं ।

यथैव वागुरांछित्वा
बलवन्तो यथा मृगाः ।

प्राप्नुयुर्विमलं मार्गं
विमुक्ताः सर्व बन्धनैः ॥
अबलाश्च मृगा राजन्,
वागुरासु तथा परे ।
विनश्यन्ति न सन्देहस्त-
द्योग बलादृते ॥

अर्थात् जैसे बलवान मृग जाल को तोड़ करके सब बन्धनों से मुक्त हुए इच्छानुसार सुन्दर रास्ते को चले जाते हैं और जो बल से हीन होते हैं, वे जाल में फँसे ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। वैसे ही जो पुरुष योगरूप बल से युक्त हैं, वह प्रारब्ध कर्मरूप जाल को तोड़ करके देहादि सब बन्धनों से रहित हुए वहाँ भावरूप इच्छानुसार विमल मार्ग को प्राप्त होते हैं और जो योग-बल से हीन हैं, वह कर्म-रूप जाल में ही पतित हुए नाना प्रकार की योनियों में भ्रमणरूप मृत्यु को प्राप्त होते हैं। इसी योग-बल से भीष्मपितामह ने छः महीना रणभूमि में बाण-शय्या पर स्थित होकर उत्तरायण सूर्य होने पर प्राणका त्याग किया। बिना योग के किसी को ऐसी सामर्थ्य नहीं है कि काल के नियम का उल्लंघन करे।

योग-तत्त्वोपनिषद्—

योगहीनं कथं ज्ञानं,
मोक्षदं भवति ध्रुवम् ।
योगो हि ज्ञानहीनस्तु
न क्षमो मोक्ष कर्मणि ॥
तस्माज्ज्ञानं न योगं,
च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत् ।

अर्थात् बिना योग का ज्ञान निश्चय करके मोक्ष का देने वाला कैसे हो सकता है और बिना ज्ञान के योग भी मोक्ष देने में समर्थ नहीं है। इसलिए मोक्षाभिलाषी ज्ञान और योग दोनों को दृढ़ता (मजबूती) से अभ्यास करे।

—० निवृत्ति के लिए चेष्टा ०—

सच पूछा जाय तो मनुष्य-जीवनका लक्ष्य ही इस प्रकार के दुःखात्मक अभावों से यथासम्भव-छुटकारा पाना है। यहाँ पर सुख की कल्पना अथवा खोज करना तो बुद्धि-हीनता का परिचय ही है। ऐसा व्यक्ति चाहे कुछ समय तक अज्ञान के कारण सुख को झूठ-मूठ अनुभव करता रहे, पर अन्त में उसको और भी अधिक दुःखों में फँसना पड़ता है। हाँ, जो व्यक्ति इस संसार को अभाव का आगार समझकर क्रमशः उसकी निवृत्ति के लिए चेष्टा करता रहेगा, वह उसके कुप्रभाव से अधिकांश में बचा रह सकता है।

—महर्षि गौतम

क्रिया योग

● श्री गिरीशदेव वर्मा

शारीरिक तप—

देव द्विज गुरु प्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्,
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।

देव पूजन—

आजकल देवताओं का मतलब उन पत्थर की मूर्तियों से समझा जाता है, जो मन्दिरों में स्थापित होती हैं और जिनका पूजन नित्य धूप, दीप, नैवेद्य आदि से किया जाता है। किन्तु यह मानव निर्मित पत्थर की मूर्तियां देव नहीं हैं और न ही उनका पूजन देव-पूजन है। वास्तव में देवता प्रकृति के पाँच तत्त्व—आकाश, अग्नि, वायु, जल व पृथ्वी हैं। इनकी पूजा कैसे की जावे, गीता में हमें मार्ग दर्शन देती है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा
पुरोवाच प्रजापतिः,
अनेन प्रसविष्यध्वमेष
वोऽस्त्विष्ट कामधुक्।

(गीता ३/१०)

अर्थ—ब्रह्मा ने कल्प के आदि में यज्ञ सहित प्रजा को रचकर कहा कि इस यज्ञ द्वारा तुम लोग वृद्धि को प्राप्त होवे और यह यज्ञ तुम लोगों को, इच्छित कामनाओं के देने वाला होवे।

देवान्भावयतानेन
ते देवा भावयन्तु वः,
परस्परं भावयन्तः
श्रेयः परमवाप्स्यथ।

(गीता ३/११)

अर्थ—इस यज्ञ द्वारा देवताओं की उन्नति करो और वे देवता लोग तुम लोगों की उन्नति करें। इस प्रकार आपस में उन्नति करते हुए परम कल्याण को प्राप्त हो जाओगे।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा
दास्यन्ते यज्ञ भाविताः,
तैर्दत्तान प्रदायैभ्यो यो
भुङ्क्ते स्तेन एव सः।

(गीता ३/१२)

अर्थ—यज्ञ द्वारा बढ़ाये हुए देवता लोग तुम्हारे लिए प्रिय भोगों को देंगे, उनके द्वारा दिये हुए भोगों को जो पुरुष उनके लिए बिना दिये ही भोगता है वह निश्चय ही चोर है।

अतः देवताओं का पूजन यज्ञ हुआ। यज्ञ द्वारा हम उनको प्रसन्न करते रहें और देवता हमारी मनोकामना पूर्ण करते रहें। हमारा

शरीर इन्हीं पञ्च तत्त्वों से बना है और इन्हीं तत्त्वों से हम प्रतिदिन काम लेते हैं। किन्तु हम इन्हें दूषित करते रहते हैं। प्रकृति ने हमें स्वच्छ जल प्रदान किया, हम उसे पीकर मूत्रादि बनाकर निकालते हैं। स्वच्छ वायु सांस द्वारा लेते हैं, किन्तु प्रश्वास द्वारा गन्दी वायु निकालते हैं। पृथ्वी हमें स्वादिष्ट भोजन प्रदान करती है, किन्तु हम उसे खाकर विष्टा बनाकर गंदगी फैलाते हैं। अतः हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि जो हम गंदगी फैलाते हैं, उसकी क्षतिपूर्ति के लिए नित्य यज्ञ करें। यज्ञ द्वारा पांचों तत्त्व अपना भाग ग्रहण कर लेते हैं और वातावरण शुद्ध हो जाता है।

शास्त्रों में भी ऐसे वचन मिलते हैं—

यजनं देवानां पूजनं सत्कार भावनं यज्ञः।

देवों का पूजन सत्कार भाव यज्ञ है।

इज्यन्ते देवा अनेनेति यज्ञः।

जिस कार्य के द्वारा देवताओं का सम्मान किया जावे वह यज्ञ है।

इज्यन्ते देवा अस्मिन्निति यज्ञः।

जिससे देवों का पूजन किया जाय उसे यज्ञ कहते हैं।

इज्यन्ते सम्पूजिताः तृप्ति मासाद्यन्ते देवा अत्रेति यज्ञः।

जिससे देवों को पूजित एवं तृप्त किया जाय वह यज्ञ है।

रामायण में भी यज्ञ की बड़ी महिमा पाई जाती है। भगवान राम तो यज्ञ-पुरुष थे। उनका जन्म यज्ञ द्वारा हुआ था। यज्ञ की रक्षा में उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया। राक्षसराज रावण भी यज्ञ पर विश्वास रखता था। वह अपने अनुचरों को आदेश देता है कि जहां कहीं यज्ञ हो रहे हों, उन्हें नष्ट कर दो, क्योंकि यज्ञ द्वारा देवता पुष्टि को प्राप्त होते हैं। उनको दुर्बल बनाने का एक ही उपाय है कि कहीं यज्ञ न होने पावे।

सुनहु सकल रजनीचर जूथा।
हमरे बैरी बिबुध बरूथा॥
तिन कर मरन एक बिधि होई।
कहहुँ बुझाई सुनहु अब सोई॥
द्विज भोजन मख होम सराधा।
सब कै जाइ करहु तुम बाधा॥

छुधाहीन बलहीन सुर,
सहजेहि मिलिहहिं आइ।
तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ,
भली भांति अपनाइ॥

विष्णु धर्मोत्तर पुराण अध्याय १६२ में लिखा है कि—

यज्ञेन देवा जीवन्ति
यज्ञेन पितरस्तथा,
देवाधीनाः प्रजासर्वा
यज्ञाधीनाश्च देवताः।

यज्ञ से देवता जीते हैं तथा पितृ जीते हैं। देवताओं के आधीन सब प्रजा है और यज्ञ के आधीन सब देवता हैं।

कालिका पुराण का वचन है कि –

> यज्ञाद्देवाः प्रजाश्चैव
> यज्ञादन्नानि योगिनः।
> सर्वं यज्ञात्सदा भाविस
> सर्वं यज्ञ मयञ्जगत ॥
>
> (कालिका पु० ३१)

यज्ञ से देवता व प्रजा सन्तुष्ट होते हैं। यज्ञ से अन्न की उत्पत्ति होती है। यज्ञ करने से ही संसार हमेशा पोषा जाता है। यह सारा संसार यज्ञरूप ही है।

> यज्ञेषु देवास्तुष्यन्ति
> यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
> यज्ञेन ध्रियते पृथ्वी
> यज्ञस्तारयति प्रजा ॥
>
> (अ० १)

यज्ञों से देवता सन्तुष्ट होते हैं। यज्ञों में सारा संसार प्रतिष्ठित है, पृथ्वी यज्ञ से धारण की हुई है। यज्ञ ही प्रजा को तारती है।

सौर पुराण का कथन है कि—

> भोक्ता स सर्व यज्ञानां शङ्करः परमार्थतः
>
> (अ० ७/१४)

भगवान शंकर यज्ञ के भोक्ता हैं अर्थात् भगवान शंकर यज्ञ से प्रसन्न होते हैं।

> इज्यते सर्व यज्ञेषु
>
> (अ० ७/ ९)

यज्ञ से भगवान शंकर की पूजा होती है।

यजुर्वेद के दूसरे अध्याय में बड़ा सुन्दर वर्णन आया है :—

> कस्त्वा विमुञ्चति ? स त्वा विमुञ्चति।
> कस्मै त्वा विमुञ्चति ? तस्मै त्वा विमुञ्चति।
> पोषाय रक्षसां भागोऽसि।
>
> (अ० २/२३)

प्रश्न करने वाला पूछता है—कस्त्वा विमुञ्चति ? किसको वह परमात्मा छोड़ देता है ? किसको ये देवता छोड़ देते हैं ? उत्तर मिलता है—स त्वा विमुञ्चति। उसको छोड़ देते हैं जो देव यज्ञ को छोड़ देते हैं। प्रश्न होता है—कस्मै त्वा विमुञ्चति ? क्यों छोड़ देते हैं ? उत्तर मिलता है—क्योंकि देव यज्ञ छोड़ दिया गया। यज्ञ करने वाला सुगन्धित वस्तुयें अग्नि में डालता है जिससे देवता प्रसन्न हों। जो ऐसा नहीं करता, जो यज्ञ किये बिना खाता है वह राक्षसों का भाग बन जाता है।

यज्ञ की महिमा से हमारे धर्म-शास्त्र भरे हुए हैं। देव यज्ञ हमारे दैनिक कर्तव्यों में से एक मुख्य कर्तव्य है। इसलिए शारीरिक तप के अन्तर्गत पहिला कर्तव्य देव-पूजन अर्थात् यज्ञ रखा गया है। नित्य यज्ञ करना भी एक तप है।

(क्रमशः)

रामायण में योग

● श्री अज्ञात

धार्मिक साहित्य में रामायण एक उच्च स्थान लिये हुए है। यह काव्य-ग्रन्थ इतना लोकप्रिय है कि सर्व-साधारण इस ग्रन्थ के नाम से भली-भांति परिचित है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने स्वयं राम के भक्त होने के नाते इस ग्रन्थ में भक्ति-पक्ष को विशेष महत्व दिया है, लेकिन इस ग्रन्थ में योग, ज्ञान, वैराग्य आदि विषयों पर भी अच्छा प्रकाश डाला है। इस ग्रन्थ का भली भांति अध्ययन से पता चलता है कि इस ग्रन्थ के प्रायः सभी नायकों के चरित्रों में योग की झलक मिलती है।

श्री सती जी की योग-शक्ति—

इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड के अनुसार महादेवी श्री सती जी योगेश्वर भगवान सदाशिव से आग्रहपूर्वक अनुमति प्राप्त कर अपने पिता दक्ष प्रजापति के यहां यज्ञ में पहुँचती है। वहां पहुँचकर सतीजी ने देखा कि उनसे प्राणाधार योग-योगेश्वर भगवान सदाशिव का यज्ञ-भाग नहीं निकाला गया है। इसे स्वामी का अपमान समझकर सतीजी का हृदय जल उठता है और वह अपने स्वामी सदाशिव को हृदय में धारण करके अपने शरीर को योगाग्नि में भस्म कर डालती है—

चौपाई—

सती जाइ देखेउ तब जागा।
कतहुँ न दीख सम्भु कर भागा॥
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ।
प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ॥
तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू।
उर धरि चन्द्रमौलि वृषकेतू॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा।
भयउ सकल मख हाहाकारा॥

महायोगिन श्री सीताजी का योग-ऐश्वर्य—

श्री सीताजी ने श्रीराम-बारात के आतिथ्य के लिए जो योग-शक्ति द्वारा कार्य किया। उसका रामायण में इस प्रकार वर्णन मिलता है, किन्तु उनके इस अद्भुत कार्य को श्रीराम के अतिरिक्त और कोई न जान सका। वह प्रसंग इस प्रकार है—

चौपाई—

जानि सिय बरात पुर आई।
कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥

हृदय सुमिरि सब सिद्धि बुलाई।
भूप पहुनई करन पठाई॥

दोहा—

सिधिसब सिय आयसु अकनि गईं जहाँ जनवास।
लिए संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास॥

चौपाई—

निज निज बास बिलोकि बराती।
सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती॥
बिभव भेद कछु कोउ न जाना।
सकल जनक कर करहिं बखाना॥
सिय महिमा रघुनायक जानी।
हरषे हृदयँ हेतु पहिचानी॥

श्रीराम जी का काया-निर्माण —

भगवान श्रीराम के किये हुए नाना प्रकार के कार्यों में यौगिक-ऐश्वर्य झलकता है। जिस समय श्रीराम लङ्का पर विजय प्राप्त कर अपनी नगरी अयोध्या में लौटकर आये, उस समय उनके नगरवासियों के मन में श्रीराम के दर्शन की प्रबल इच्छा थी। हर व्यक्ति यह अभिलाषा करता कि राम मेरे अत्यन्त प्रिय हैं, अवश्य वे पहले मेरी ओर आयेंगे। वशिष्ठ, वामदेव आदि गुरुजन भलीभाँति जानते थे कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम अवश्य आकर प्रथम नमन हमें करेंगे। कौशिल्या, सुमित्रा आदि श्रीराम की मातायें अपने मन में यह भली प्रकार समझती थीं कि राम हमारा अबोध शिशु है। उसके मन में हमारे प्रति बहुत प्यार है, वह शीघ्र आकर हमारी गोद में बैठ जायेगा। इस प्रकार लोगों के मनमें अपने भावानुरूप विभिन्न भावनायें भरी हुई थीं। जिनको उनके भाव के अनुरूप ही पूर्ण करना हर व्यक्ति के लिए सुसाध्य नहीं हो सकता। किन्तु जिस समय श्रीराम ने यह देखा कि अयोध्या के नागरिक प्रेम भरे हृदयोंसे विभिन्न भावों में मुझे देख रहे हैं, तो उन्होंने अपनी योग-शक्ति से काया-व्यूह की रचना की और सभी लोगों के सामने उन-उनके भावानुसार उनके सामने प्रकट हो करके यथा योग्य सम्मान, प्यार एवं मिलन किया। तुलसीदास जी ने अपनी रामायणमें निम्नांकित चौपाइयों में इस प्रकार से इस भावको व्यक्त किया है—

चौपाई—

अमित रूप प्रगटे तेहि काला।
जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥
कृपा दृष्टि रघुबीर बिलोकी।
किये सकल नर नारि बिसोकी॥
छन महि सबहिं मिले भगवाना।
उमा मरम यह काहुँ न जाना॥
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा।
आगे चले सील गुन-धामा॥

भरत जी के आतिथ्य में भरद्वाज का योग-ऐश्वर्य—

श्री भरत जी जब श्रेष्ठ मुनि भरद्वाज जी के प्रेम-प्रिय बनकर उनके आश्रम में गये तो

मुनि को चिन्ता हुई कि हमने बहुत बड़े मह-मान को निमन्त्रण दिया है। अब जैसा देवता हो, उसकी वैसी ही पूजा भी होनी चाहिए। बस इस संकल्प के मन में आते ही ऋद्धियाँ और अणिमादि सिद्धियाँ आ गईं और बोलीं, हे मुनि जी! जो आपकी आज्ञा हो हम करें। यह विषय निम्नांकित चौपाइयों से स्पष्ट है—

चौपाई—

रिधि सिधि सिर मुनिवर बानी।
बड़ भागिनि आपुहि अनुमानी॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई।
अतुलित अतिथि राम लघु भाई॥
मुनिपद बंदि करिअ सोइ आजू।
होइ सुखी सब राज समाजू॥
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना।
जेहि बिलोकि बिलखहिं बिमाना॥

सुतीक्ष्ण की भाव-समाधि —

मुनि सुतीक्ष्ण जी का श्रीराम जी के चरणों में अति अनुराग था। मुनि सुतीक्ष्ण ने जब अपने इष्ट मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के आगमन की सूचना सुनी तो वह प्रगाढ़ प्रेम के वशीभूत होकर ध्यानस्थ हो गये। जिसके परिणामस्वरूप उनके हृदयमें श्रीराम प्रकट हो गये। इसका वर्णन रामायण में इस प्रकार पाया जाता है—

चौपाई—

अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा।
प्रगटे हृदयँ हरन भवभीरा॥

मुनि सुतीक्ष्ण अपने इष्टदेव के ध्यान में इतने तल्लीन हो गये कि उन्हें अतिरिक्त अपने इष्ट के अन्य का भान ही न रहा। वह बाहरी ज्ञान से बिल्कुल शून्य होकर पूर्णरूपेण अन्त-र्मुख होकर अचल हो गये। तुलसीदास जी के शब्दों में—

चौपाई—

मुनि मग माझ अचल होइ बैसा।
पुलक सरीर पनस फल जैसा॥

योग दर्शन में इस स्थिति का वर्णन इस प्रकार पाया जाता है—"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्"। अर्थात् वृत्तियों को जिस ध्येय वस्तु में लगाया जाय, केवलमात्र उसी में तैल धारावत् लगे रहना ही ध्यान कहलाता है।

भगवान् राम ने जब अपने भक्त को इस प्रकार अचल समाधिस्थ अवस्था में देखा तो उन्होंने सुतीक्ष्ण मुनि को अनेक प्रकार से जगाने का असफल प्रयत्न किया। मुनि सुतीक्ष्ण अपने इष्टदेव के ध्यान में इतने निमग्न होकर उस भाव समाधि की सुखानुभूति प्राप्त कर रहे थे कि उन्हें ज्ञान ही न था कि मेरे सामने मेरे ही इष्टदेव खड़े होकर मुझे जगा रहे हैं। मुनि की समस्त वृत्तियां अपने इष्ट

में तदाकार रूप में परिणित हो गई थी, जिसके फलस्वरूप वह बाहरी ज्ञान से बोध-हीन हो गये थे।

जब किसी प्रकार भी उनकी सुख-समाधि न खुली तो अन्त में श्रीराम ने मुनि के हृदय से अपने स्वरूप को हटाकर अपने को चतुर्भुज रूप में प्रकट कर उनके ध्यान में वह अन्तराय पैदा किया, जिसके फलस्वरूप मुनि की समाधि खुल गई। गोस्वामी जी के शब्दों में—

चौपाई—

मुनिहि राम बहु भांति जगावा।
जाग न ध्यान जनित सुख पावा॥
भूप रूप तब राम दुरावा।
हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा॥

इस प्रकार सम्पूर्ण रामायण में स्थान-स्थान पर इसके प्रत्येक नायक के चरित्र से योग-ऐश्वर्य की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। स्वयं इस ग्रन्थ के ग्रन्थकार श्री तुलसीदास जी ने भी इस ग्रन्थ को अपने इष्टदेव मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के ध्यान में ध्यानावस्थित होकर ही लिपिबद्ध किया है। वस्तुतः गोस्वामी जी ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त सन्त-शिरोमणियों में से थे जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनका अपना ग्रन्थ रामायण है। श्री तुलसीदासजी ने इसी आधार को लेकर इतने महत्व-पूर्ण तथा लोकप्रिय ग्रन्थ को लिखा।

—ॐ ज्ञानी का गुण—सरलता ॐ—

ज्ञानी सरल स्वभाव का होता है, उसमें कुटिलता नहीं होती। वह जो कहता है, वही करता है। सरलता और नम्रता ज्ञानी में सहज स्वभाव से रहती है। इसके विरुद्ध ज्ञानहीन मनुष्य कुटिल होता है, कपट करता है, दूसरों को ठगता है। कहता कुछ है और करता कुछ है।

जैसे खिले हुए फूल की सुगन्ध स्वभाव से ही फैली है, वैसे ही ज्ञानी का सरल स्वभाव आपही आप जनता के अनुभव में आता है। वह अपना सरल मत ही सहज रूप में ही बिना संकोच प्रकट करता है। अन्तःकरण में कुछ और बाहर कुछ और। ऐसा भाव में जिसमें नहीं होता वह ज्ञानी होता है।

—गीता

सुन्दर शोभा सद्गुरु की

[माता—द्रौपदीदेवी द्वारा रचित एक लोक-गीत—जिसे योग-साधन आश्रम ऋषीकेश-योग महोत्सव की शोभा-यात्रा के अवसर पर सु०श्री उमा शर्मा द्वारा स्वरबद्ध किया गया।]

यह सुन्दर शोभा सद्गुरु की, अरे मो पै बरणी न जाय।

क्या मुख से वर्णन करूँ, छवि है अती विशाल।
कहते-कहते नहीं बन रही, देखी होय निहाल ॥ यह०

शीश पै मुकुट किरन की चमकन गल फूलन के हार।
योगेश्वर प्रभु राम विराजे, योग शक्ति को धार ॥ यह०

हुई तैयारी चढ़ी सवारी, आज खुशी का दिन आया।
सारी संगत आगे, पीछे, ढोल, नगारा बजाया ॥ यह०

तरह-तरह की बनी झांकियां, अद्भुत शोभा न्यारी।
ऊपर से अम्बर ने अमृत की, वर्षा कर दी भारी ॥ यह०

कैसा नक्शा बदला गुरुजी, इम्तहान होय न पाया।
आगे-आगे कदम बढ़ाकर, चमत्कार दिखलाया ॥ यह०

पहले बाजा बैंड सजाया फिर राधा कृष्ण की झांकी।
संग में सखियां लगीं मनोहर, शोभा कैसी बांकी ॥ यह०

दूजी झांकी गोरखनाथ की, उत्पत्ति दृश्य दिखाया।
उसके पीछे चला अखाड़ा, वीरता रूप बनाया ॥ यह०

तीजी झांकी योग-प्रदर्शन, श्रीहरि चैतन्य दिखलाये।
बड़े तपस्वी ब्रह्मचारी हैं सब जीवन तप में लगाया ॥ यह०

चौथी झांकी चीर-हरण की, दुश्शासन ढेर लगाया।
द्रौपदी रक्षक श्रीकृष्ण जी, दुष्ट सभा पछताया ॥ यह०

पांचवीं झांकी चले सुदामा, पुरी द्वारका आया।
योगेश्वर ने देख भक्त को, लेकर कण्ठ लगाया ॥ यह०

उसके पीछे भजनी मण्डल, नामी राम भी गाया।
सारे भक्तों ने मिल-मिल कर, सुन्दर ताल लगाया ॥ यह०

फिर आई थी छठवीं झांकी, जहां विषपान दिखाया।
उसके पीछे रामली मण्डल, रंग था खूब जमाया ॥ यह०

विज्ञान और योग

लेखक—सुभाष किरपेकर अनुवादक—भूकिशोर पस्तोर

श्री क्लॉड वाडे (अंग्रेज) ने महाराजा रणजीतसिंह के दरबार में सन् १८३७ ई० में घटित एक योग चमत्कार का वर्णन किया है, जो निम्न प्रकार है—

महाराजा के सामने एक फकीर ने स्वयं को भू-गर्भित किया। उसके शरीर को एक चौकोर गड्ढे में राजमहल के पासके मैदान में गाड़ा गया। दरवाजे को चूने पत्थर से बन्द करके उस पर राजा की व्यक्तिगत मोहर (सील) लगाई गई। चार सन्तरियों ने चारों कोनों पर लगातार निगरानी की। प्रत्येक सन्तरी का समय दो घण्टे था, उसके पश्चात् ड्यूटी बदल दी जाती थी। इन सन्तरियों की निगरानी के लिए आफीसरों की ड्यूटी अलग लगी हुई थी। ६ सप्ताह पश्चात् राजा रणजीतसिंह ने स्वयं सील को तोड़कर दरवाजे को खोला। जमीनसे तीन फीट नीचे फकीर एक ४×३ फुट के लकड़ी के सन्दूक में लेटा था। इसको भी सीलबन्द करके ताला लगाया गया था। सन्दूक को तोड़ने पर फकीर को एक कपड़े के थैले में बन्द पाया गया जिसका मुँह बंधा हुआ था। इस थैले में फकीर का शरीर थोड़ा-थोड़ा दीख रहा था जो इस प्रकार सिकुड़ा था जिससे सन्दूक में

पिछले पृष्ठ का शेष

सातवीं झांकी श्रीसद्गुरु की, मन जिसने ललचाया।
कछुआ मंडल जोर-शोर से, प्रभु का जैकार सुनाया। यह०
योग का प्रचार है, सच्चा दरबार है।
योग को अपनाओगे, सच्चा जीवन पाओगे॥ यह०
प्रभु चरणों में बैठ द्रौपदी, देख-देख हर्षावे।
श्रीगुरु चरणन का लिये सहारा झांकी के गुन गावे॥ यह०
ये सुन्दर शोभा सद्गुरु की प्यारी शोभा सद्गुरु की।
ये न्यारी शोभा सद्गुरु की, मो पै बरणी न जाय॥

जा सके। फकीर ने अपने नौकर को पहले से ही आदेश दे रखे थे कि उसे किस प्रकार जाग्रत किया जावे ? सेवक ने फकीर के अकड़े हुए अङ्गों को गर्म पानी से स्नान कराया एवं रगड़ के द्वारा उन अङ्गों में जीवन संचार किया। गर्म गेहूँ की रोटी फकीर के सिर पर बार-बार रखी गई थी। नाक और कानों में से मोम तथा रुई बाहर निकाली गई। फकीर की जीभ, जिसने तालु बन्द कर रखा था, जीभ और तालु के बीच में चाकू घुसेड़ कर जीभ को अलग करने का प्रयत्न किया गया। दो-तीन बार जीभ अपने स्थान पर वापिस गई, किन्तु फिर तालु पर से हट गई और गले का मार्ग प्रशस्त हो गया। उसकी आंखों पर घृत मला गया। अन्त में फकीर के शरीर में कम्पन हुआ, नाक के द्वार हिले, आंखों का प्राकृतिक रंग वापिस आया और फकीर में इतना जीवन सञ्चार हो गया कि उसने गहरी सांस ली। तत्काल फकीर ने राजा रणजीत-सिंह से प्रश्न किया, "क्या तुम अब विश्वास करते हो ?"

उपर्युक्त घटना अंग्रेजी में वर्णित प्राचीन-तम चमत्कार है। दूसरा चमत्कार एक योगी फकीर के द्वारा लन्दन में सन् १८२६ ई० में प्रदर्शित किया गया था। इस योगी ने समाधि में जाकर अपनी नाड़ी की गति २० प्रति मिनट कर ली और फिर बढ़ा करके इसको १२० प्रति मिनट कर लिया। त्वचा को चाकुओं के लिए अभेद्य कर लिया। गले पर किये गये घावों को १० मिनट के अन्दर इस प्रकार ठीक कर लिया कि उनका नामोनिशान भी न रहा और एक शानदार कृति थी में योगी ने स्वयं को १५ मिनट तक रेत में गाड़े रखा तथा रेत में से निकल कर सही भविष्य-वाणी की कि डर्बी रेस में कौनसा घोड़ा जीतेगा ?

आजकल के हठयोगियों में से किसी ने भी इन प्रारम्भिक हठयोगियों जैसे कार्य प्रद-र्शित नहीं किये, किन्तु शारीरिक नियन्त्रण तथा चिकित्सा सम्बन्धी योग-क्रियायें केवल प्रायः प्रत्येक नगर में मिल जाती है। केवल ६ माह पहले ही एक योगी नागा बाबा ने सात दिन की समाधि भोपाल में ली थी। कुछ साल पहले बम्बई में योगी समाधीश्वर ने एक इण्टरव्यु में बतलाया कि उनकी उम्र १२५ साल है और तीसरी दुत पंक्ति निकल रही है। कुछ साल पहले स्वामी धीरेन्द्र ब्रह्म-चारी ने अन्तर्भारतीय चिकित्सा संस्थान के डाक्टरों की एक कमेटी को सन्तोषपूर्वक प्रदर्शित किया कि उनके आसनों के कोर्स के द्वारा मधुमेह रोगकी चिकित्सा की जा सकती है। ४० दिन के आसनों के कोर्स से २५ में से २३ रोगी मधुमेह से मुक्त हो गये—ऐसा डाक्टरों की उक्त कमेटी ने बतलाया। इसी प्रकार स्वामी ने सफेद कोढ़, दमा तथा बवा-

रोग को निर्मूल करने का दावा किया और करके बतलाया।

पश्चिमी देशों में योग के प्रति रुचि कई शताब्दियों पहले ही जाग गई थी, किन्तु पिछले २० वर्षों में यह आकर्षण चरम सीमा को पार कर गया। योग की दीक्षा लेने वाले पाश्चात्यों का क्षेत्र अत्यन्त विभिन्न है। उदाहरणतः यहूदी मेन्युहिन (संसार प्रसिद्ध वायलिन-वादक) हालीवुड की अभिनेत्री मिया फैरो की बहिन, जिसने अमरीका में कई योगाश्रम खोल रखे हैं। नई दिल्ली में अर्जेन्टिना फिनलैंड की राजदूत की ६० वर्षीय पत्नी। उन्होंने पिछले साल सप्रू हाउस दिल्ली में कई आसन लगाकर जुटे हुए दर्शकों को आश्चर्यचकित कर दिया।

योग का प्रवेश लौह आवरण (रूस) में भी हो गया है। सन् १९४९-५० में एक योगी ने समस्त मास्को को आश्चर्यचकित कर दिया—रूस की बर्फ गिरते जाड़े में केवल एक धोती तथा अंग-वस्त्रम् पहनकर घूमता रहा। इस घटना ने कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं को चिन्तित कर दिया और कुछ दिन बाद रूस की स्वास्थ्य नामक पत्रिका ने योगको अस्वास्थ्यकर बतला कर योग की निन्दा किया। उसमें लिखा गया, "मेलबर्न ओलम्पिक खेलों में रूसी खिलाड़ियों ने जो स्वर्ण और रजत पदक जीते, उससे रूसी व्यायामों की श्रेष्ठता प्रदर्शित होती है। किसी भी योगी के हिस्से एक भी पदक नहीं आया"। किन्तु इस प्रकार योग की शासकीय निन्दा लेनिन नाम के बर्फ तोड़ने वाले परमाणु शक्ति-चालित पोत के चीफ इन्जीनियर पर कोई प्रभाव न डाल सकी क्योंकि उसने स्वीकार किया कि वह योग का अनन्य भक्त है। सन् ६० के आते-आते रूसी सरकार का रुख परिवर्तित हुआ और भारत आये हुए रूसी डाक्टरों ने योग में गहरा आकर्षण व्यक्त किया।

यौगिक क्षेत्र में कुछ मात्र प्रदर्शक एवं अनाड़ी हैं। जैसे मैसूर के हठयोगी लक्ष्मण मांड्रा, श्रीकान्त राव। पहले इन्होंने अमरीका में टेलीविजन पर कांच के टुकड़े खाना और शोरे का तेजाब पीना—इन क्रियाओं को बतलाया। तीन साल पहले बम्बई में इस योगी ने दावा किया कि योग की अन्तिम सिद्धि—पानी पर चलना प्रदर्शित करेंगे। सम्भवतः योगी राव आवश्यकता से अधिक डींग हांक गये। अन्तर्विश्व के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सामने बम्बई में कृत्रिम तालाब में पानी में पैर रखा और डूब गये, प्रतिष्ठा और नाम भी डूब गया।

योगी राव जैसे व्यक्ति योग के नाम को ऊँचा उठाने के स्थान पर उसमें बट्टा लगाते हैं, किन्तु अन्य योगियों की उपलब्धियां, जो खूब आश्चर्यमय हैं इतनी महत्वपूर्ण हैं कि

उनमें गम्भीर वैज्ञानिक गवेषणा की आवश्यकता है। इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करने वाली डा० श्रीमती थेरेसे ब्रांस है जो अमरीका के सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक संस्थान हरवर्ड विश्वविद्यालय में गवेषणारत हैं। श्रीमती थेरेसे भारत में सर्व प्रथम सन् १९३६ में फ्रांसीसी मेडीकल मिशन के साथ आई थीं। श्रीमती थेरेसे ने बतलाया कि मृत्यु से पहले श्वासोच्छ्वास का न्यून होना तथा हृदय की कार्डियाक पेशी का सिकुड़ना एक वास्तविक शारीरिक क्रिया है, जिसे योगी इच्छा मात्र से कर सकता है। इससे सिद्ध होता है कि योगी को भू गर्भित किया जा सकता है। सावधानी से किये गये गड्ढे में कुछ हवा छोड़ी जा सकती है, जिससे यदि योगी का प्रथम प्रयत्न असफल रहा तो योगी दो-तीन श्वांस लेकर समाधिमें जा सकता है। श्रीमती थेरेसे ने यह भी ज्ञात किया कि समाधिस्थ योगी श्वास नहीं लेता। सन् १९५२ में थेरेसे भारत आईं, एक फ्रांसीसी डाक्टर मिलोवेनोविच के साथ। किन्तु अमरीका से एक मशीन न आने के कारण उनको इस बार की शोध अधूरी रही। सन् १९५७ में वह मशीन आ गई और इसे दिल्लीके अन्तर्भारतीय चिकित्सा संस्थान में फिट कर दिया गया। इसी समय से डाक्टरों की एक पार्टी इस इलेक्ट्रानिक मशीन के द्वारा योगियों पर शोधकार्य के लिए व्यस्त है। पिछले १२ वर्षों में इस संस्थान में ५०० से अधिक योगियों पर शोधकार्य किये जा चुके हैं। यद्यपि अधिकतर दावे गलत सिद्ध हुए फिर भी बहुत कुछ सत्य पाये गये। इस सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उन सब क्रियाओं की जिनको योगी इच्छानुसार करते हैं, का वैज्ञानिक स्पष्टीकरण ज्ञात हो सका है।

श्रीमती थेरेसे के द्वारा किये गये शोधकार्य को डा० वेंगर और डा० बागची ने जारी रक्खा। आजकल दिल्ली के अन्तर्भारतीय चिकित्सा संस्थान में डा० बालकृष्ण आनन्द तथा डा० गुलआरसिंह इस शोधकार्य में रत हैं। लगभग ५०० योगियों में से ५० योगियों के दावे सही पाये गये। इन दावों में हृदय की धड़कन बन्द करना, इच्छानुसार स्वेद निकालना और भूगर्भित होना है। इन ५०० योगियों में कुछ विदेशी थे एक तिब्बती लामा (बौद्ध योग का विशेषज्ञ) तथा अंग्रेज योगी डा० फिलिसरोडीन थीं। डा० चिब्बा से इन शोधों का परिणाम पूछा गया तो उन्होंने अन्तिम रूप से कुछ कहने में असमर्थता व्यक्त की। डा० चिब्बा ने कहा कि योगियों के कुछ दावे सही हैं और कुछ का स्पष्टीकरण ज्ञात हुआ। यह नहीं कहा जा सकता है कि योगियों के अतिशयोक्तिपूर्ण दावे गलत हैं, हो सकता है वे सत्य निकलें। इतना अवश्य है कि योग को वैज्ञानिक आधार देने के लिए अभी बहुत

शोधकार्य होता है। फिर भी अभी किये गये शोधकार्य से इतना स्पष्ट है कि योग के द्वारा शारीरिक क्रियाओं में सुधार तथा योग का वैज्ञानिक आधार होने की सम्भावना है। यह डा० मिश्रा ने कहा। फिर भी बहुत से प्रयोग किये जा चुके हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि योग-द्वारा शारीरिक क्रियाओं पर नियन्त्रण सम्भव है। कुछ प्रयोग ये हैं— बिल्कुल शान्त वातावरण में भारतीय दर्शकों ने एक हाल में लाउडस्पीकर द्वारा योगी की दिल की धड़कन बन्द हो गई। डाक्टरों ने स्टैथस्कोप के द्वारा धड़कन सुनने की चेष्टा की किन्तु व्यर्थ, नाड़ी भी बन्द हो गई। इसी योगीकी धड़कन तथा नाड़ी जब अन्तर्राष्ट्रीय चिकित्सा संस्था में बन्द हो गई तब डाक्टरों ने इलट्रोकार्डियो-ग्राम उपयोग किया (इस यन्त्रसे हृदय धड़कन का रेखाचित्र खींचा जाता है), इससे ज्ञात हुआ कि योगी का हृदय अत्यन्त मन्द गति से धड़क रहा था। डा० मिश्रा ने इस घटना का वैज्ञानिक स्पष्टीकरण दिया, 'योगीवक्ष के खोलने पर दबाव बढ़ाता है। पतली रक्त-वाहक नलियां जो दिल में रक्त लाती हैं, इस दबाव से बन्द हो जाती हैं। इस प्रकार हृदय में बिल्कुल या बहुत कम रक्त पहुँचता है और निकलता है, इसलिए दिल की धड़कन तथा नाड़ी दोनों सूक्ष्मतम हो जाते हैं। कोई आवाज नहीं आती, क्योंकि हृदय का वाल्व कोई कार्य नहीं करता है। किन्तु यह केवल कुछ सेकिण्ड के लिए ही किया जा सकता है।" दूसरे योगी ने दावा किया कि भोजन और पानी के अभाव में २८ दिन तक भू-गर्भित हो सकता है। योगी को वायु निरोधक बाक्स में सील बन्द कर दिया गया। योगी बाक्स में १० घण्टे तक बन्द रहा। यह पाया गया कि योगी ने अपनी शारीरिक आव-श्यकताओं को (आक्सीजन इत्यादि लेना) ५०% कम कर दिया है। उसमें केवल उतनी ही आक्सीजन ली, जिससे उसकी शारीरिक क्रियायें सूक्ष्मतम गति से चलती रहें। इस योगी पर तीन बार प्रयोग किया गया, जो सफल रहा। अनुभवी योगियों ने दावा किया समाधिस्थ होने पर उनका मस्तिष्क एवम् नाड़ी-मण्डल बाहरी ज्ञान के लिए अभेद्य हो जाता है। डा० मिश्रा ने कहा कि योगियों का यह दावा शोधकार्य में सत्य पाया गया।

समाधिस्थ योगी को प्रकाश की चमक, ध्वनि, स्पर्श और कम्पन का ज्ञान नहीं होता है। कुछ योगी तो पीड़ा का अनुभव भी नहीं करते हैं। उदाहरण के लिए एक समाधिस्थ योगी के हाथों को २० मिनट तक बर्फ में डुबो दिया गया, किन्तु उस योगी ने अपनी नाड़ी-मण्डल को इस प्रकार वशीभूत किया था कि उसके मस्तिष्क को इस पीड़ा का कोई ज्ञान नहीं हुआ यहां तक कि इलेक्ट्रोकार्डियो-ग्राम यन्त्र ने भी योगी की हृदय की धड़कन

में कोई परिवर्तन लक्षित नहीं किया, नहीं उसके शरीर ने कोई प्रतिक्रिया की। दूसरे समाधिस्थ योगी के हाथों पर अंगारे रखे गये, कोई असर नहीं हुआ, किन्तु इन अंगारों ने परम-तत्त्व की गवेषणा में विलीन मस्तिष्क को विचलित नहीं किया। मस्तिष्क की प्रतिक्रियाओं की भी यन्त्रों द्वारा जांच की गई। साधारण अवस्था में जब योगी न सो रहा है न समाधिस्थ है, तब उसके मस्तिष्क ने प्रतिक्रिया बतलाई। जब मस्तिष्क को क्रियान्वित किया गया तो उसकी प्रतिक्रिया ठीक हुई, लेकिन समाधिस्थ होने पर मस्तिष्क को क्रियान्वित करने पर कोई प्रतिक्रिया नहीं मिलती है। एक अन्य नवयुवक योगी जो एम० एस० सी० है उसने कई वर्ष हिमालय के बर्फीले इलाके में व्यतीत किये। यह नवयुवक केवल मृगचर्म पहनता था तथा शीत से रक्षा के लिए शरीर का तापक्रम इच्छानुसार बढ़ा लेता है। वह इच्छानुसार शरीर के किसी भी हिस्से पर एकाग्रता करके पसीना निकालता है। डा० मिश्रा ने यह सब बतलाया। डा० मिश्रा से यह भी नहीं पाया कि सब योगी श्वास रोककर समाधिस्थ हो सकते हैं। क्या साधारण व्यक्तियों को योग-क्रियायें सीखनी चाहिए? यह प्रश्न करने पर डा० मिश्रा ने कहा—"योग लाभकारी है। योगाभ्यासी अधिक सहनशक्ति रखता है, लेकिन यह सब व्यक्ति विशेष की आवश्यकता पर आधारित है कुछ योग-क्रियायें लाभकारी हो सकती हैं और कुछ नहीं? अभी हम योग के सम्बन्ध में किसी निर्णयात्मक स्थिति में नहीं पहुँचे हैं, किन्तु अभी तक किये गये प्रयोगों की दिशा में योगको वैज्ञानिक कसौटी पर कस कर इसे वैज्ञानिक आधार प्रदान करेंगी।" अभी हाल ही में महर्षि महेश योगी के कुछ शिष्यों की जांच भी अन्तर्राष्ट्रीय चिकित्सा संस्थान में सम्पन्न की गई है, किन्तु जैट हवाई जहाज वाले महेश योगी ने स्वयं को और अपने भारतीय ध्यान के गुणों को यहां के प्रयोगों में नहीं परखवाया।

—टाइम्स ऑफ इण्डिया से साभार

मनुष्य उन्नति के उपायों को जानकर सदा बढ़ता रहे, जैसे कि चींटी आदि छोटे-छोटे जीव भी बढ़ने में लगे रहते हैं।

× × × ×

जो मनुष्य निर्भय होकर धर्म करता है, वह मृत्यु अर्थात् अपकीर्ति से बचकर नाम करता है, जैसे सद्वैद्य महारोग को मिटाकर यश पाता है। —अथर्ववेद

श्री दादूदयाल जी

श्री मानिकचन्द उमर वैश्य, वाराणसी

राजपुताने के प्रसिद्ध सिद्ध महात्माओं में श्री दादूदयाल जी बहुत ही महिमान्वित सन्त हो गये हैं। १५वीं, १६वीं, व १७वीं शताब्दि तथा पीछे तक भारतवर्ष में उस धर्मघातक विपरीत मुसलमानी राज्य में— गोरखनाथ, कबीरदास, रामानन्द, नामदेव, रैदास, गुरु नानक, गुरु गोविन्द, मीराबाई, पीपा, धना, रामचरण, श्यामाचरण, हरदास, जगजीवन, पलटूदास, दरियासाहब इत्यादि अनेकों महान् आत्मायें अवतीर्ण हुयीं और धर्म की रक्षा तथा प्रजाजनों में सत्य का प्रचार करके उन्होंने धर्म और देश को बचाया।

श्री दादू जी जाति के नागर ब्राह्मण थे। अहमदाबाद में लोदीराम नागर ब्राह्मण के घर दैवी विभूति रूप में जन्म सं० वि० १६०१ में हुआ था। लोदीराम के कोई पुत्र नहीं था। भगवान् से प्रार्थना करने पर एक दिन नदी में बहता हुआ सन्दूक मिला, उसमें खेलता हुआ ज्योतिर्मय बालक मिला। अपनी स्त्री को वह बालक लाकर दिया। ईश्वर की कृपा से उनकी स्त्री की स्तनों में बालक के लिए दूध टपकने लगा। लाल का लालन-पालन हुआ। बाल्यावस्था में श्रीकृष्ण भगवान् ने वृद्ध रूप धारण कर इस दैवीपुत्र को ११ वर्ष की अवस्था में दिव्य ज्ञान दिया।

श्री दादू जी विरक्त, भक्त और ज्ञानी हो गये। कुछ वर्षों बाद सत्संग में बाहर निकल गये। माता-पिता ने उनका पीछा करके घर लाकर उनका विवाह कर दिया, परन्तु वहां तो परमात्मा में गहरी लगन लग गई थी, उनको संसार कहां भाता था। साधु-संगति में रमते-रमते सांभर में आ गये, यहां उनकी ख्याति हो गई। यहां आठ-दस वर्ष ज्ञान का प्रचार करते हुए आमेर आये। यहीं से अकबर बादशाह से फतहपुर सीकरी जाकर मिले। दादूजी ने अपने आपको छिपाने के लिए रुई पीदने का (अर्थात् पिंजारे का) काम करना शुरू किया, तब से पिंजारे कहलाने लगे जैसे— चर्मकार रैदास, रंगभक्त, कबीर जी आदि ने ऐसे ही पेशे किये थे। महात्माओं की गति कौन जाने!

अन्त में नारायणी-जयपुर से करीब १६ कोस पर समारोल कछवाहा-शासकों के स्थान में विराजे और वहीं उनके शरीर का अवसान

हुआ। इनके दो पुत्र और दो पुत्रियां थीं। बड़े-गरीबदास जी, जो बड़े ही महात्मा और गान्धर्व विद्या में अत्यन्त निपुण थे। उनके उत्तराधिकारी उनके बड़े पुत्र गरीबदास जी हुए। नारायणा प्रधान स्थान दादू-पंथियों का है। दादू जी का यहां सुन्दर सफेद पत्थर का "दादू-द्वार" बना है। सांभर, आमेर, भैराणा आदि स्थानों में भी दादू-द्वारे के मकान व बाहन महन्तों के स्थानों में भी 'अस्थल' हैं। दादू-पंथी साधु प्रायः हर एक शहर, गांव व कस्बे में मिलेंगे, उत्तर प्रदेश, गुजरात, पंजाब आदि में। इनके आचरण प्रायः अच्छे, स्वच्छ और प्रिय होते हैं। दादू सम्प्रदाय एक प्रतिष्ठित सम्प्रदाय है और इसमें गुणी, ज्ञानी, वीर, साहसी, कवि, कलावान् पुरुष होते आये हैं।

श्री दादू जी के १५२ शिष्य हुए। उनमें से १०० शिष्य तो तप और त्याग धारण कर विचर गये, उनके पीछे कोई शिष्य तक नहीं परन्तु ५२ शिष्य बड़े प्रसिद्ध और ज्ञानी थे। वे बहुतसे स्थान व शिष्य छोड़ गये हैं। प्रधान ५२ शिष्यों में से अत्यन्त प्रसिद्ध जो हो गये थे कुछ ये हैं—गरीबदास जी, बड़े सुन्दरदास जी, रज्जब जी, मोहनदास जी मेवाड़, जगजीवनदास जी, बाबा बनवारीदास जी, चतुर्भुज जी, प्रागदास जी बिहाणी, जैमलजी कछवाहा, जैमल जी चौहान, बनगोपाल जी बखना जी, जग्गा जी, जगन्नाथ जी कायथ, सुन्दरदास जी दूसर इत्यादि अनेकों ने अपने गुरु दादूदयाल के मतानुसार वाणियां भी रची हैं। उनमें से बहुत सी मिलती भी हैं। रज्जब, सुन्दर, जगजीवन, गरीबदास, बनगोपाल, प्रागदास, जगन्नाथ, बखना इत्यादि की रचनायें सुन्दर और भावगर्भित हैं। किसी साधु कवि ने ठीक ही कहा है—

दादू दीनदयाल के चेले दोय पचास।
कई उदयमान कई चन्दु हैं दिनकर सुन्दरदास॥

दादूदयाल—दयालुता के कारण 'दयाल जी' अर्थात् 'दादूदयाल जी' कहाते हैं। उनके बहुत चमत्कार इस धरा पर हुए। दो-तीन चमत्कारों का वर्णन इस प्रकार है—

(१) उन दिनों दादूदयाल जी आमेर में विराजते थे। उनके शिष्य भिक्षा के निमित्त आमेर में सेवकों या भक्तों के घर जाते थे। दादू जी के साथ अनेक शिष्य थे। उनमें से एक प्रिय शिष्य जग्गा जी नाम का दादूजी के सेवक भक्त कोलियों के घरों में भिक्षा मांगने के लिए यही कहते थे कि—"दे माई सूत, ले माई पूत" कोलियों के घर में एक कन्या सूत कात रही थी। उसने यह शब्द सुनकर उक्त साधु को भक्तिपूर्वक सूत की कुकड़ियां दे दी और कहा—लो बाबा जी सूत। तो साधु जग्गा ने कुकड़ियां लेकर कह दिया कि 'लो माई तेरे पूत।' जब यथेच्छ भिक्षा लेकर

(आटा व गुड़) जग्गा जी 'अपने' को ओट आये तो दादू जी ने समाधि हाल में अपने शिष्य की इस बात को जान लिया। समाधि खुलने पर अपने प्यारे शिष्य से कहा—"भाई तुम तो दग आये" अर्थात् जिस कन्या के भाग्य में पुत्र नहीं था, उसको पुत्र का वरदान दे आये। अब वचन सत्य करने को तुमको जाना पड़ेगा अर्थात् तुमको उसका विवाह हो जाने पर उसके घर जन्म लेना पड़ेगा। मेरे शिष्य का वचन मिथ्या नहीं होना चाहिए। गुरु जी की इस आज्ञा को सुनकर जग्गा के होश उड़ गये, क्योंकि उसने जान लिया कि गुरु का वचन सत्य करने के लिए मुझे मर कर उस लड़की के विवाहित होने पर उचित समय पर उसके घर पुत्र होकर जन्म लेना अनिवार्य होगा। गुरु के सामने सिर झुका कर कहा—'जो आज्ञा', परन्तु साथ ही गुरु के चरणों में यह निवेदन किया कि—"चाहे मैं मरकर उस वैश्य कन्या का पुत्र भले ही होऊँ परन्तु श्रीचरणों में आता रहूं।"

(२) दादू जी रुई का व्यापार करते थे और इस व्यापार में सब रुपया उधार ही लिया था। उनके महाजनों के नाम, जिनसे वे रुपया उधार लेते थे, सुन्दरदास व निश्चलदास थे। व्यापार में टोटा (घाटा) होने पर इन दोनों व्यापारियों ने अपने रुपयों के लिए दादू जी से तकाजा किया। दादू जी ने रुपये देने से इन्कार किया, तब उन महाजनों ने कहा कि रुई में आग लगा दो। दादू जी ने आग लगा दी तब राख में स्वर्ण का पासा निकला। इस चमत्कार को देख के "महात्मा दादू के चरणों पर गिरे और उन्हें अपना गुरु धारण किया।" ये दोनों मनुष्य चेलों में गिने जाते हैं और सुन्दरदास जी की कविता जगत्-प्रसिद्ध है।

(३) दादूदयाल जी की महिमा की एक कथा ऐसी भी मशहूर है। कहते हैं कि उनके शिष्य सुन्दरदास जी कुछ दिनों तक लगातार स्वप्न देखते थे कि कोई उनके जूता मार रहा है। इससे घबराकर अपने गुरु से हाल कहा। उन्होंने बताया कि तू बहुत अण्ड-बण्ड काव्य किया करता है। मालूम होता है कि किसी काव्य में तेरे आग लग गई है और आज्ञा दी कि हाल में जो कविता की हो उसे लाकर सुना। जब वे सुनाने लगे तो एक जगह निकला—"सुन्दर कोप नहीं सुपन"। दादूजी बोल उठे कि यही तब तेरे जूते खाने का कारण है, क्योंकि इसमें पदच्छेद से—"सुन्दर को पनही सुपनें"। ऐसा पाठ निकलता है, इसी से तुझे सपने में पनही अर्थात् जूती लगती है। तू 'कोप' की जगह 'कोह' बना दे। कोह कोप का अपभ्रंश है। सुन्दरदास जी ने ऐसा ही किया तो उस दिन से सपने में जूता लगना बन्द हो गया।

श्री दादू जी की वाणी के दो विभाग हैं। एक साखी जिसमें दोहा, सोरठा व कहीं-कहीं पर चौपाई या और कोई छोटा छन्द है। दूसरा पद या भजन, जो कई रागों में है। सारी वाणी में लगभग सात हजार अनुष्टुप-छन्द बताये जाते हैं। साखी सैंतीस अङ्गों में ढाई हजार से ऊपर है और पद २७ रागों में चार सौ से कुछ अधिक हैं। इस वाणी में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य में बड़ा ज्ञान का सार रसामृत भरा हुआ है। वाणी कोमल, मधुर, सरल, सुन्दर भाषा में है, जिसके पढ़ने से निरञ्जन निराकार का उच्च ज्ञान और ध्यान सहज ही प्राप्त होता है। कहा है—

आदि निरञ्जन, अन्त निरञ्जन,
मध्य निरञ्जन, दादू।
कहि 'जगजीवन' अलख निरञ्जन
तहाँ बसैं गुरु दादू॥
अविचल मन्त्र जपै निसवासर,
अविचल आरति गावै।
अविचल इष्ट रहै सिर ऊपरि,
अविचल हो पद पावै॥

संयम, योग-साधन, तितिक्षा, सन्तोष, दया, धर्म आदि के दयाल जी मूर्तिमान अवतार ही रहे हैं। तभी तो वे 'दयाल' कहलाये। साधना में बहुत करारे साधक थे। सांभर के सर की छत्री में जाकर (गुमटी में) तप किया करते थे और सर भरा होता था। तब अपनी योग-शक्ति की खेचरी मुद्रा से सर के ऊपर होकर वैसे ही आया करते थे जैसे पृथ्वी पर चलते थे। ऐसे चमत्कारों ने ही उनकी विभूति का बड़ा अधिक प्रकाश किया। यद्यपि ये चमत्कार आवश्यकता के समय स्वयं ही हो जाया करते थे। सांभर के काजी की कथा प्रसिद्ध ही है। अनेक दीन, गरीबों और बीमारों को सहायता देना तो उनका विशेष कर्त्तव्य था ही।

इस प्रकार संक्षेप में—दादूदयाल जी के जीवन-चरित्र का यह दिग्दर्शन है। विषय महान् है, गहन है, रहस्यमय है।

—० ब्रह्मचर्य यानी सर्वेन्द्रिय-संयम ०—

अक्सर ब्रह्मचर्य का संकुचित अर्थ किया जाता है। इसलिए ब्रह्मचर्य का पालन कठिन माना गया है। ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल जननेन्द्रिय का संयम माना जाता है। परन्तु ब्रह्मचर्य का सही अर्थ सर्वेन्द्रिय-संयम है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन मिलकर ११ इन्द्रियों का समुदाय है। इन सबका संयम होगा तो जननेन्द्रिय का संयम सुलभ हो जायगा। ब्रह्मचर्य-पालन में स्वादेन्द्रिय संयम से बहुत सहायता मिलती है।

—महात्मा गांधी

आश्रम समाचार—

योग-साधन आश्रम ऋषीकेश का

वार्षिक महोत्सव

*** हमारे—अपने प्रतिनिधि द्वारा

गत् २६, २७ और २८ मई को श्रीमहाप्रभु जी द्वारा संस्थापित योग-साधन आश्रम ऋषिकेश का वार्षिक योग-महोत्सव योगाचार्य अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के संरक्षण और सभापतित्व में धूमधाम से मनाया गया।

श्री महाराज जी इस समारोह की तैयारी के लिए लगभग एक सप्ताह पूर्व ही पहुंच गये थे तथा आपके यहां पहुँचने के पश्चात् ही आपके अनेक शिष्य भी आ पहुँचे थे। ऋषिकेश आश्रम में नियुक्त ब्रह्मचारी श्री पूरनचन्द्र तथा श्री दाऊलाल आदि ने महाराज श्री की आज्ञानुसार, बाहर से आने वाले साधकों एवं अतिथियों के लिए पहले से ही समीपवर्ती धर्मशालायें तथा आश्रम आदि रिजर्व करा लिये थे। इन रिजर्व कराये गये आश्रमों और धर्मशालाओं में उन सभी भाई-बहनों को जो महोत्सव में आये थे सुविधापूर्वक ठहराया गया था।

प्रभात-फेरी—

महोत्सव का शुभारम्भ २६ मई को प्रभात-फेरी से हुआ था। उषा-बेला से पूर्व ही सभी आगन्तुक भाई-बहनों ने मिलकर ऋषिकेश के मुख्य-मुख्य बाजारों में घूमते हुए योगयोगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी की जय-जयकार का उद्घोष करते हुए प्रमुख बाजारों और मुहल्लों का चक्कर लगाया तथा उत्सव के कार्यक्रम की सूचना देते हुए सभी योग-प्रेमी नागरिकों को वार्षिक महोत्सव में सम्मिलित होने तथा २८ मई को शोभा-यात्रा की सूचना एवं उसमें शामिल होने का निमंत्रण भी देते जाते थे। बाजार तथा मुहल्लों में फेरी लगाने के बाद वे सभी फेरी वाले भाई-बहन आश्रम पहुचकर नित्य कर्मसे निवृत होने चले गये। गंगा-स्नान के पश्चात् प्रथम दिवस के कार्यक्रम का आरम्भ महाप्रभु जी की सामूहिक आरती व पूजन से हुआ। इस सामूहिक आरती के पश्चात् श्री सद्गुरुदेव जी महाराज (आचार्य श्री चन्द्रमोहन जी महाराज) का अति स्मरणीय और हृदय को गद्गद् करने वाला भाषण हुआ। श्री

महाराज जी ने अपने भाव विभोर करने वाले भाषण में महाप्रभु जी के उन लीला-चरित्रों का वर्णन किया और उन कुछ घटनाओं को दोहराया, जब वे स्वयं महाप्रभु जी के चरणों में यहां आये थे, आचार्य जी ने कहा कि श्री प्रभुजी हिमालय को छोड़कर अवनी मण्डल पर लोक-कल्याण करने को ही आये थे। उन्होंने अपने निर्माण चित्त के द्वारा अनगिनती लोगों का भला किया। निर्माण चित्त के साथ ही साथ उन्होंने निर्माण-काय के द्वारा आधि-व्याधि से ग्रसित लोगों के दुःखों को स्वयं ग्रहण करके उनका भुगतान किया। कितने ही रोगियों को रोग-मुक्त करके जीवन तत्व साधनों द्वारा उनका नव-निर्माण किया। श्री महाराज जी ने अपने भाषण में अमृतसर के श्री मानकचन्द दलाल की स्वयं देखी घटना सुनाई और बताया कि किस प्रकार श्री प्रभुजी ने श्री मानकचन्द के कठोर-तम संस्कार को स्वयं पर आकर्षित करके उन्हें कष्ट-मुक्त किया (श्री मानकचन्द की यह घटना इसी अङ्क में अन्यत्र दी जा रही है जो श्री महाराज जी की आंखों देखी घटना है)।

श्री महाराज के इस महत्वपूर्ण भाषण के पश्चात् संगीत की ध्वनियां पण्डित भोजदत्त द्वारा चलाई जाती रहीं। इस कार्यक्रम के कुछ देर तक चलने के बाद दोपहर के भोजन और विश्राम के लिए आयोजन को स्थगित कर दिया गया।

महिला-सत्संग—

भोजन-विश्राम के पश्चात् ३ बजे से ५ बजे तक महिला-सत्संग का आयोजन बहिन द्रौपदीदेवी अमृतसर की अध्यक्षता में आरम्भ हुआ। सरस संगीत और उपदेशों का मिला-जुला यह कार्यक्रम स्त्री-पुरुष दोनों के लिए बहुत ही प्रभावोत्पादक रहा। ५ बजे के पश्चात् उसी मञ्च पर महाराज जी के प्रिय शिष्य काश्मीर के ब्रह्मचारी श्री हरिभक्त चैतन्य का व्याख्यान हुआ। जिसमें उन्होंने अपने जीवन की अनुभूतियां बतलाईं और कहा कि वे 'सिद्धगुफा' सवाई के श्री सद्गुरु देव के चरण-कमलों में किस प्रकार पहुँचे। श्री चैतन्य जी ने कहा कि—मुझे एक चरित्र-वान् और सद्गुण सम्पन्न गुरुदेव की भारी तलाश थी। मैं एक दिन इसी चिन्तन में गंगातट पर ध्यानस्थ था, इसी ध्यानस्थ अवस्था में मुझे यह आकाशवाणी सुनाई दी कि तुम 'सिद्धगुफा' सवाई आश्रम जाओ, वहां तुम्हें उपयुक्त महापुरुष मिलेंगे और उन्हीं के संरक्षण में तुम्हें निःश्रेयस्य और सिद्धि प्राप्त होगी।

इस आकाशवाणी के अनुसार मैं एक दिन 'श्री सिद्धगुफा' की यात्रा पर निकल पड़ा और वहां जाकर कृतकृत्य हो गया। मुझे एक सर्वगुण सम्पन्न सद्गुरु की प्राप्ति हुई और उनके सानिध्य से वे सभी विषय मेरी

बुद्धि के प्रकाश में आये जिनकी मुझे चाहना थी। मुझे गुरुदेव जी से योग-मार्ग की अनेक ग्रन्थियाँ सहज ही सुलभ हो गईं। गुरुदेव जी के सान्निध्य और मार्ग दर्शन में निरन्तर योग-मार्ग के पथ पर आज तक दृढ़ता से आरूढ़ होकर उत्तरोत्तर मैं प्रगति के पथ पर हूँ।

इस प्रकार ब्रह्मचारी श्री हरिभक्त चैतन्य के भाषण के बाद मध्याह्नोत्तर का कार्यक्रम समाप्त हुआ। रात्रि का कार्यक्रम पुनः प्रभु जी की सन्ध्याकालीन आरती से ६ बजे से आरम्भ हुआ, जिसमें स्थान-स्थान से आई हुई संकीर्तन मण्डलियों ने अपने-अपने सरस-संगीत प्रस्तुत किये। आगरे के पं० भोजदत्त शर्मा ने अमरसिंह राठौर की वीररस प्रधान एक घटना सुनाई। पं० दत्तु शर्मा करनावल जिला मेरठ निवासी ने श्री गुरुदेव जी की महिमामें श्रद्धा-भक्ति-पूर्ण भजन सुनाये।

दूसरे दिन २७ मई का कार्यक्रम भी प्रातः-कालीन सामूहिक आरती और मधुर भजनों के साथ आरम्भ हुआ। मंगल-गान के पश्चात् महाराजजी का महत्वपूर्ण भाषण हुआ जिसमें उन्होंने चित्त और उसके भेदों का वर्णन किया और बताया कि हमारे गुरुदेव श्री योग और और ध्यान की कक्षायें लगवाया करते थे और उच्चतम साधन चित्त निर्माण का उपदेश दिया करते थे और चित्त निर्माण की विधि प्रत्येक साधक को बतलाया करते थे। चित्त-निर्माण की अवस्था प्राप्त हो जाने पर निर्माण चित्त वाला साधक सिद्ध प्राप्त योगियों से बातचीत तथा उनसे सम्पर्क स्थापित करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। महाशय जी ने लगभग डेढ़ घण्टे के भाषण में प्रस्तुत विषय को बड़े ही सरल ढङ्ग से समझाया। इसके बाद दोपहर के भोजन व विश्राम के लिए पुनः कार्यक्रम स्थगित कर दिया गया।

दोपहर के बाद का कार्यक्रम महिला-सत्संग से पुनः आरम्भ हुआ। माता द्रोपदी-देवी ने एक सुन्दर भजन सुनाया, जिसे उन्होंने स्वयं बनाया था। कु० श्री उमा शर्मा संगीत-रत्न के मनोहर भजन भी प्रभावोत्पादक रहे।

इसी अवसर पर संगीत कार्यक्रम के बाद पण्डित श्री ऋषिराम शर्मा बनारस वालों का महत्वपूर्ण भाषण हुआ, जिसमें विद्वान-वक्ता ने योग और वेदान्त के सिद्धान्तों का विवेचन करते हुए योग-सिद्धान्तों की श्रेष्ठता सिद्ध की।

पश्चात् ब्रह्मचारी श्री प्रियव्रत ने योगासनों का प्रदर्शन किया जिसकी व्याख्या ब्रह्मचारी श्री हरिभक्त चैतन्य करते जाते थे और बतलाते जाते थे कि प्रदर्शित आसन किस-किस रोग को दूर करने और किस अंगको पुष्ट करने की क्षमता रखता है। आसन-प्रदर्शन का कार्यक्रम बड़ा ही उपयोगी रहा।

पश्चात् श्री महादेव शास्त्री का 'कर्म-काण्ड के द्वारा योग-साधना' के विषय पर महत्वपूर्ण भाषण हुआ।

तीसरे दिन का कार्यक्रम—

तीसरे दिन २८ को गंगा-दशहरा के दिन ब्रह्मभोज और शोभा-यात्रा का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। दोपहर को यज्ञ-हवन के पश्चात् दण्डी-संन्यासियों और ब्रह्मचारियों को भोजन कराया गया। सायंकाल ५ बजे के लगभग शोभा-यात्रा का आरम्भ होना था। इस शोभा-यात्रा में जो झाँकियां बनाई गईं, वे अधिक आकर्षक और प्रेरणा-प्रद थी, जिनमें मुख्य मुख्य इस प्रकार थीं—

(१) बैण्ड-बाजा।

(२) अखाड़ा ओमप्रकाश सेनानीश रमती वालों का।

(३) प्रियव्रत ब्रह्मचारी द्वारा आसनों का प्रदर्शन।

(४) कृष्णार्जुन झांकी।

(५) योगी गोरखनाथ की झांकी।

(६) द्रौपदी चीर-हरण।

(७) कृष्ण-सुदामा की झांकी।

(८) झांसी संकीर्तन-मण्डल, शामली संकीर्तन-मण्डल के साथ ठाकुर विमान की झांकी भी थी।

(९) श्री सद्गुरुदेव का दिव्य-दर्शन।

झांकियों की सजावट महाराज जी के प्रिय शिष्य श्री तुलसीराम जी तथा भाई ठाकुरलाल जी ने बड़े ही प्रेम और श्रद्धा से की थी। यह सभी झांकियां दर्शनीय और आकर्षक थीं।

५ बजे के लगभग जब शोभा-यात्रा का प्रारम्भ होने को था, मौसम कुछ अनुकूल नहीं था। आंधी और और वर्षा का जैसा वातावरण था, सम्भावना थी कि कहीं कार्य-क्रम स्थगित न करना पड़े, किन्तु कुछ ही देर में प्रभुओं की महिमा से जिनकी स्मृति स्वरूप यह आयोजन होता रहा है वातावरण अनुकूल हो गया और शोभा-यात्रा ऋषिकेश के मुख्य बाजार से घूमकर रात के लगभग १२ बजे आश्रम वापस आ पहुँची।

इस प्रकार तीनों दिन का यह महोत्सव बड़े ही आनन्दोल्लास के वातावरण में सम्पन्न हुआ और बाहर से आये हुए अनगिनती भाई-बहनों ने गंगा-स्नान के साथ-साथ योग-गंगा की विचार धारा में अवगाहन करने का लाभ भी लिया।

पेट की क्षुधारूपी अग्नि को शान्त करने के लिए अविवेकी पुरुष संसार-रूपी समुद्र में डूब जाता है। यह बड़ा अनुचित है, क्योंकि शीत की पीड़ा दूर करने के लिए घर या मकान को आग नहीं लगाई जाती।

—तत्वज्ञान से साभार

हृदय-रोगों से कैसे बचें ?

■ प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान विशेषज्ञ श्री धर्मचन्द सरावगी

हृदय-रोगों से बचे रहने के लिए प्रतिदिन किसी प्रकार का शारीरिक श्रम करना या कोई व्यायाम करना अति आवश्यक है। साधारण व्यायाम की जगह उपयोगी यौगिक व्यायाम भी किये जा सकते हैं। नियमित व्यायाम अथवा श्रम किसी भी उम्र में आरम्भ किया जा सकता है और जारी रखा जा सकता है। श्रम एवं व्यायाम से हृदय को शक्ति एवं स्फूर्ति प्राप्त होती है। यदि हमारे शरीर की मांसपेशियां स्वस्थ तथा चुस्त हैं, तो हृदय की मांसपेशियां भी निश्चय ही सशक्त होंगी। किन्तु यदि हमारे शरीर की मांसपेशियां कमजोर एवं सुस्त होंगी, तो हृदय भी कमजोर होगा। इस सिद्धान्त के प्रकाश में हम जोर देकर कह सकते हैं कि नियमित परिश्रम और व्यायाम से हृदय-रोगों से सुरक्षित रहा जा सकता है। ब्रिटेन के चिकित्सालयों में हृदय के रोगों के एक बार आंकड़े लिये गये। ज्ञात हुआ कि जिन व्यक्तियों का दैनिक कार्य हल्का है (उदाहरणार्थ—शिक्षक, क्लर्क आदि)। वे उन लोगों से तीन गुना अधिक हृदय के रोगों से पीड़ित होते हैं जिनका कार्य कठोर और परिश्रम का होता है जैसे—मजदूर एवं किसान-वर्ग। साथ ही यह भी पता चला कि हल्का कार्य करने वाले की आयु कम होती है, जबकि कठोर श्रम करने वालों की आयु अधिक होती है।

हृदय-रोगों से बचने के लिए पैदल चलना और प्रातः भ्रमण सर्वोत्तम व्यायाम माना गया है। लेकिन हममें से बहुत से लोग सुबह से लेकर १०-११ बजे रात तक अपने कार्य में लगे रहते हैं। टहलने के लिए उन्हें जरा भी समय नहीं मिलता। ऐसी दशा में यदि वे हृदय-रोगों से पीड़ित हों तो क्या आश्चर्य है।

पैदल चलने या प्रातः भ्रमण के अलावा हृदय-रोगों से बचने के लिए अन्य व्यायाम भी किये जा सकते हैं। किन्तु प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि हृदय के लिए सबसे अच्छा व्यायाम वह है, जो ऑक्सीजन की मांग की पूर्ति करता है। अर्थात शरीर को बाध्य करता है कि वह अत्यधिक ऑक्सीजन ले। इस प्रकार का व्यायाम करने से हृदय ताकतवर बनता है। इससे वह प्रत्येक धड़कन के साथ अपेक्षाकृत अधिक रक्त फेंकता है, जिससे धड़कनों की संख्या में कमी हो जाती है और

हृदय को काफी आराम मिल जाता है। हृदय प्रति रात निद्रावस्था में १०००० धड़कनें और प्रतिदिन जागृत-अवस्था में लगभग ३०००० धड़कनें बचा लेता है। वास्तव में मनुष्य की आयु इन्हीं धड़कनों से बंधी रहती है। उसके जीवन की अवधि का माप ही यह है कि उसके हृदय को कुल कितनी बार धड़कना पड़ता है। धड़कनों की उपर्युक्त बचत से निश्चय ही उसकी उम्र भी बढ़ जाती है।

यह मालूम करने के लिए कि आपके शरीर को या आपके हृदय को व्यायाम की जरूरत है या नहीं, कृपया शान्त चित्त होकर चुपचाप बैठ जाइये। इसके बाद अपने ही हाथ की नाड़ी पर दूसरे हाथ की उँगलियां को रखकर नाड़ी की गति (धड़कनों) को गिनिये। यदि यह गति एक मिनट में ८० बार या उससे अधिक हो तो समझ लीजिये कि आपका स्वास्थ्य कोई बहुत अच्छा नहीं है। ऐसी स्थिति में आपको कुर्सी या गद्दी का मोह छोड़कर प्रतिदिन उचित व्यायाम करने लग जाना चाहिए। इस प्रकार आप अपने हृदय को सम्भवतः प्रतिदिन २०००० से ३०००० तक अतिरिक्त या व्यर्थ की धड़कनों के अनावश्यक परिश्रम से बचा सकेंगे। व्यायाम करने से ज्यों-ज्यों हृदय अधिकाधिक मजबूत होता जायेगा, त्यों त्यों उसे अधिक काम करने की क्षमता प्राप्त होगी और वह शक्तिशाली बनेगा।

जो चाहते हैं कि हमें कोई हृदय-रोग न हो, उन्हें अति भोजन से बचना चाहिए। उन्हें अधिक मात्रा में भोजन कदापि नहीं करना चाहिए, विशेषकर चर्बी वाले भोजन। शरीर में ६०० से अधिक पेशियां हैं। चर्बी की मात्रा बढ़ जाने से ये पेशियां सुचारु रूप से अपना काम नहीं कर पातीं। परिणामस्वरूप नसों द्वारा गंदे रक्त के हृदय में लौटने की क्रिया में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है और हृदय को अधिक परिश्रम करना पड़ता है, जिससे वह थक जाता है। द्वितीय महासमर के समय में लेनिनग्राड के लोगों की तीन बार परीक्षा की गई। पहली परीक्षा नगर का अवरोध होने के पहले की गई। दूसरी अवरोध के समय, जब खाद्य पदार्थों का बहुत टोटा था। तीसरी परीक्षा अवरोध उठा लेने के बाद की गई। परीक्षकों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अवरोध के समय भुखमरी की सी अवस्था में तो जो लोग हृदय-रोगों से पीड़ित थे, वे बिलकुल चंगे हो गये। अवरोध के हटते ही खाद्य पदार्थ पूर्ववत् अधिकता से मिलने लगे, पर वे हृदय-रोग अवरोध के पहले की तरह फिर मौजूद हो गये। इससे यह सिद्ध हुआ कि अधिक भोजन ही हृदय के रोगों का मुख्य कारण हुआ करता हुआ करता है।

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

श्री डा० विजयसिंह, गोरखपुर

शरीर द्वारा ही सारे धर्मों की साधना सम्भावित है। यह देह तत्त्व क्या है? हम देहाभास से कब और कैसे मुक्त होंगे? देह आत्मा का क्या सम्बन्ध है? यह सब प्रश्न सूक्ष्म रूप से विचार करने योग्य है। साधारणतः लोग देह की महत्ता को भूल जाते हैं। बौद्ध काल में तो उनके सामयिक अनेक सम्प्रदायों में देह को ही अत्यन्त कष्ट देना, कठिन से कठिन परिस्थितियों को देह पर झेलना ही साधना एवं मोक्ष का आधार समझा जाता था। वे समझते थे कि कायिक कष्टों के पश्चात् ही आनन्द उद्भव होता है। कुछेक ने तो सिद्धियों, शक्तियों की प्राप्ति होने का साधन घोर कायिक कष्ट सहना ही सिद्धान्त बना लिया था परन्तु इन बातोंमें अधिक तथ्य नहीं है। हमें मूल रूप से देह की उत्पत्ति पर सर्वप्रथम विचार करना होगा। आखिर देह निर्माण होता कैसे है? योनिज, अयोनिज व अन्य प्रकार के भेदों को भी समझना इस विषय को जानने के लिए अत्यन्त आवश्यक होगा।

जब से जीव अनादि अवर्णनीय शक्ति के प्रभाव से संसार-प्रथा में बँधा है, तभी से उसे देहाध्यास है और जब कभी आत्म-बोध को और अवसर हुआ है तो इसी देहाध्यास को मिटाकर। वस्तुतः जीव आत्म-विस्मृत हो गया है। उसकी चेतना मलिन एवं देश, काल से प्रभावित है। साधारण लोग इसीलिए देह और आत्मा में भेद नहीं कर सकते हैं। विशुद्ध आत्मवादी दार्शनिक भी नाना प्रकार से देह की सत्ता को स्वीकार करते हैं। देह की उत्पत्ति रज और वीर्य के संयोग से या उसके बिना हो, परन्तु दोनों प्रक्रियाओं में भौतिक अणुराशि किसी एक विशिष्ट स्थान पर अवस्थित होकर बिन्दुभाव को प्राप्त होती है, तब स्थूल देह का निर्माण होता है। बाह्य उपादानों से क्रमशः पुष्टि प्राप्त कर यथासमय उत्पन्न होता है।

जब तक मानव योग-साधना द्वारा स्थिर-रेता और ऊर्ध्वरेता नहीं हो जाता, तब तक उसकी अधोरेता अवस्था स्वाभाविक है। साधारणतः मानवमात्र की अधोरेता अवस्था ही है। कामवश न होने के कारण विक्षोभ के द्वारा वीर्य की गति अधोमुखी हो जाती है।

इस सन्निवेश से शरीर में व्याप्त शक्ति सत्ता (बिन्दुसत्ता) वाष्पीभूत हो घनीभाव को प्राप्त होकर क्रमशः अधोभूमि में अवतीर्ण होते होते तैजस एवं तरल अवस्था को प्राप्त होकर नाभि के निम्न देश (मणिपूरक) में इकट्ठा हो जाती है। वहां से रेतोवहा नाड़ी के द्वारा बाहर निकल जाती है, यही प्राकृत काम का रहस्य है। परन्तु जो कामजयी हैं (ब्रह्मचारी हैं) उनको यदि स्थूल सृष्टि के कार्य में प्रवृत्त होना होता है तो वे पहले अपनी इच्छा शक्ति के द्वारा या योग शक्ति से काम को विक्षुब्ध करते हैं। क्योंकि बिन्दु के क्षोभ प्राप्त हुए बिना सृष्टि विकास होना असम्भव है। ऊर्ध्वरेता महापुरुषों में निष्काम भाव प्रवृत्ति होने के कारण इनमें प्राकृत मानवों के सदृश्य काम-भाव उत्पन्न होता ही नहीं। पूर्वोक्त विधि से शुक्र-शोणित के मिलन से मैथुन सृष्टि व योनिज देह का उत्पादन होता है।

पौराणिक ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि स्थूल देह केवल योनिज ही नहीं होती, अपितु अयोनिज देह भी होते हैं। भगवती सीता अयोनिज सम्भवा थीं। अनेकों मुनि, ऋषियों का देह अयोनिज रहा है। योगी के शुद्ध संकल्प से परमाणु आकृष्ट होकर यथावत स्थान में स्थित हो देह का निर्माण करते हैं। प्रलय के पश्चात् सर्व प्रथम उत्पन्न होने वाले देहों का निर्माण भी इसी प्रक्रिया से होता है, अतः यह सभी देह अयोनिज देह हैं। ऊर्ध्वरेता का शक्ति स्रोत ऊपर की ओर प्रवाहित होता रहता है। अतः मात्र आग्रह काम के प्रभाव से कुछ समय के लिए अधोमुख होता है। जो काम का आवाहन नहीं करते वे महापुरुष शुद्ध काम के आश्रय से केवल नाभि, हृदय और मस्तक को अपनी अंगुलियों से स्पर्श करते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा देह सम्बन्ध स्थापित किये बिना ही योगी लोग गर्भ-सञ्चार कर सकते हैं। यह भी रजो-वीर्य संघात की प्रक्रिया है परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म है। जो योगी-जन कामाश्रय के अत्यन्त विरोधी हैं वे इस सूक्ष्म प्रक्रिया को भी मान्यता नहीं देते हैं। इन बातों से स्पष्ट होता है कि देह उत्पत्ति मात्र योनिज या प्राकृतिक ही नहीं हुआ करता। इन लोगों का देह जो अयोगत रज-वीर्य संघात से उत्पन्न हुआ है, निश्चित ही अशुद्ध एवं अपवित्र है। अतः योग साधनाओं द्वारा इस सभीको शुद्धीकरण करना आवश्यक हो जाता है, तभी अलौकिक ईश्वरीय कलाओं का साक्षात्कार होना सम्भव होता है। साधना द्वारा शरीर में कामांश को नष्ट किये बिना ईश्वर की प्राप्ति मन का पोलाव पकाने के सदृश्य ही होगा। ऊर्ध्वरेता के संकल्प प्रभाव से जो देह उत्पन्न होती है, वह उपरोक्त कथित स्थूल शरीर से अधिक शुद्ध एवं पवित्र होती है, फिर भी इसमें मलिनता होती ही है। जो

मात्र स्पर्श से देह उत्पन्न होता है वह इस दूसरी श्रेणी के शरीर से भी अधिक शुद्ध होता है। वे देह जो मात्र दर्शन या चिन्तन के द्वारा उत्पन्न हो जाते हैं, अथवा ऐसी प्रक्रिया से गर्भ-संचार होता है। इस प्रकार से उत्पन्न काया चौथी श्रेणी का कहा जा सकता है। यह उपरोक्त कथित तीनों प्रकार से उत्पन्न शरीरों की अपेक्षा अधिक पवित्र होता है। भगवान व्यास द्वारा सत्यवती की बहुओं द्वारा पुत्र उत्पन्न इसी दृष्टिपात द्वारा गर्भ-संचार की विधि से किया गया था जिसके फलस्वरूप पाण्डु, धृतराष्ट्र एवं विदुर जी का जन्म हुआ था।

इसके अतिरिक्त जिस स्थूल शरीर की रचना में स्त्री-पिण्ड व गर्भ-पिंड की आवश्यकता नहीं होती, वह काया अत्यन्त श्रेष्ठ एवं पवित्र होती है। यह ठीक है कि सूक्ष्म योनि तत्व की आवश्यकता सर्वदा ही रहती है। 'योनि शरीरम्' के नियमानुसार योनिके बिना लिंग-ज्योति सृष्टि कार्य का सम्पादन अकेले नहीं कर सकता है। अतः योगी के संकल्प से योनिक उपादान शक्ति आकृष्ट होकर जिस देह का निर्माण करता है वह पांचवीं प्रकार का है यह अत्यन्त शुद्ध होता है। निर्माण-काय देह इसी कोटि का होता है। परम कारुणिक योगयोगेश्वर श्री महाप्रभु जी का निर्माण-काय शरीर ही इस भूतल पर कार्य करता रहा है। बौद्ध एवं पातञ्जलगण का निर्माण देह इसी कोटि का है। अनादि सिद्ध योगीका इस प्रकार का चिन्मय काया-निर्माण जब चाहें जितनी संख्या में चाहें मात्र संकल्प प्रभाव से कर लिया करते हैं।

ईसुक्राइस्ट की माता मरियमकुमारी थी और कुमारी रहीं। कर्ण को पैदा करने के पश्चात् भी कुन्ती कुमारी ही रही। ऐसे उदाहरण जिसमें स्त्री कुमारी रहकर भी अर्थात् विकृत न होकर सन्तान जनती है, वे देह भी लौकिक होते हुए भी शुद्ध होता है। अतएव देखा गया कि योनि के बिना भी देह निर्माण सम्भव है। यद्यपि ये सभी देह स्थूल ही होते हैं।

स्थूल देह को भोगायतन कहते हैं, क्योंकि इस देह का अवलम्बन लेकर ही पूर्व कर्मों का फल भोग सम्भव है। सूक्ष्म एवं कारण देह भोगायतन नहीं है। मनुष्य देह पाने के पूर्व तक चौरासी लाख देहों में जन्म ग्रहण करना मात्र प्राकृतिक व्यापार ही है। क्योंकि उसके अन्दर व्यक्तिगत इच्छा या कर्म प्रेरणा नहीं है। परन्तु मानव देह को प्राप्त होते ही अहं स्वाभिमान उत्पन्न हो जाता है। अतः यहीं से कर्म फल भोग की उत्पत्ति सम्भव हो जाती है। अभिमान के विकास से अनन्त प्रकार की इच्छा का स्फुरण होता है, जिससे संस्कार-चक्रों का निर्माण होता है और मानव शनैः शनैः भंवर जाल में फंसता जाता है।

इस अभिमान-जनित कर्म-भोग के जाल को विनष्ट करने पर ही स्वाभाविक आत्मिक स्वरूप का बोध होता है। जिसके हेतु मानव को दीक्षादि ग्रहण करके योगादि का अनुसरण करना आवश्यक होता है।

मानव देहगत वैचित्र्य सूक्ष्मदर्शी साधकों के सिवा साधारण जनों को गोचर नहीं होता है। जिस स्थूल देह की हम बात कर रहे हैं, वह मूल रूप से शक्ति रूप ही है। स्थूल देह के संचार में भी ज्ञान एवं क्रिया-शक्ति ही सन्निहित है। ये दोनों शक्तियां अन्तःकरण में सम्मिलित हुई तेजोमयी देह के अन्दर सूक्ष्म नाड़ियों के माध्यम से प्राणादि वायु तत्व का अवलम्बन लेकर काम करती हैं। सारी इन्द्रियां स्थूल देह पर आधारित ही दिखाई पड़ती है, परन्तु यथार्थतः यह बात नहीं है। जिन्होंने परकाया-प्रवेश की बातें पढ़ी होंगी, वे समझते हैं कि किस प्रकार से सारी ज्ञानेन्द्रियों सहित जीव का एक काया को छोड़कर दूसरी काया में प्रवेश हुआ करता है। आद्य शंकराचार्य द्वारा काम-कला अध्ययन परकाय-प्रवेश विधि से ही किया गया था। यथार्थतः इन्द्रियां तेजोमय शक्ति विशेष ही की देहगत स्फूर्ति है, इस तेज को ही लिंग शरीर कहते हैं। यह स्थूल देह के साथ ओत-प्रोत रहता है। जैसे काष्ठ में सर्वत्र अग्नि व्याप्त है, लिंग शरीर वैसे ही दिखाई नहीं पड़ता है उसे क्रिया विशेष से जागृत करना पड़ता है। संसारी जीवों का लिंग शरीर विशुद्ध नहीं है। नाना प्रकार के संस्कार, वासना सभी इसे मलिन किये हुए हैं। जन्म-जन्मान्तर के संस्कार इसके चारों ओर चिपटे हुए हैं। इन सबको दूर करने पर ही लिंग शरीर निर्मल होता है। मृत्यु के उपरान्त स्थूल देह को त्याग कर लिंग बाहर चला जाता है। उस समय भी सारे संस्कार-जाल उससे वेष्ठित ही रहते हैं। अतएव मरने पर भी छुटकारा नहीं है। जीव को कर्म फल भोगने के हेतु ही स्थूल देह धारण करने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

अन्ततोगत्वा जब जीव योगारूढ़ हो, आत्म साक्षात्कार करता है उस समय आत्मा के स्वरूप को जान लेने के कारण उसका अभिमान नष्ट हो जाता है। इसलिए नवीन कर्मों का बीज भी नष्ट हो जाता है और देहात्म बोधके अभाव से प्राक्तन कर्म भी दग्ध हो जाते हैं।

पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्

येषां वृत्तिः समावृद्धा परिपक्वा च सा पुनः।
ते वै सद्ब्रह्मतां प्राप्ता नेतरे शब्दवादिनः॥

जिनकी यह ब्राह्मी वृत्ति बढ़ी हुई और परिपक्व होती है वे ही अति श्रेष्ठ ब्रह्मभाव को प्राप्त होते हैं, केवल शब्द से ही कहने वाले अन्य पुरुष नहीं।

× × ×

कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः।
ते अज्ञानितमा नूनं पुनरायान्ति यान्ति च॥

जो ब्रह्मवार्ता में कुशल हैं, किन्तु ब्राह्मी वृत्ति से रहित और रागयुक्त हैं, निश्चय ही वे अत्यन्त अज्ञानी हैं और बारम्बार जन्मते-मरते रहते हैं।

× × ×

भावितं तीव्रवेगेन वस्तु यन्निश्चयात्मना।
पुमांस्तद्धि भवेच्छीघ्रं ज्ञेयं भ्रमरकीटवत्॥

जिस वस्तु का निश्चयपूर्वक तीव्र वेग से चिन्तन किया जाता है पुरुष तुरन्त वही हो जाता है—यह बात भृङ्गी कीड़े के दृष्टान्त से जाननी चाहिए।

× × ×

निगमाचार्यवाक्येषु भक्तिः श्रद्धेति विश्रुता।
चित्तैकाग्र्यं तु सल्लक्ष्ये समाधानमिति स्मृतम्॥

शास्त्र और आचार्य के वाक्यों में भक्ति रखना श्रद्धा है और अपने वास्तविक लक्ष्य में चित्त की एकाग्रता ही समाधान कहलाता है।

—अपरोक्षानुभूति से

साधना में आहार और निद्रा

पहली बात जो मैं मनुष्यों से कहता हूँ, जब वे खाना या सोना नहीं चाहते, वह यह है कि बिना उचित आहार और निद्रा के कोई योग नहीं हो सकता (इस विषय पर गीता को देखो)। उपवास और अनिद्रा स्नायुओं को क्षुब्ध और उत्तेजित और मस्तिष्क को दुर्बल कर देते हैं तथा भ्रम और स्वैर-कल्पना पैदा कर देते हैं। गीता कहती है कि योग उसके लिए नहीं है जो बहुत अधिक खाता या बहुत अधिक सोता है, उसके लिए भी नहीं है जो न खाता है और न सोता है, परन्तु यदि कोई उचित रूप से खाता और सोता है, युक्ताहार युक्तनिद्र है, तो वह सर्वोत्तम रूप से योग की साधना कर सकता है। दूसरी हर वस्तु के साथ यही बात है। कितनी बार मैंने कहा है कि मैं एकान्त की अधिकता पर संदेह करता हूँ और केवल ऐसी साधना को अस्वस्थ साधना समझता हूँ।

भोजन की लालसा से छुटकारा पाने के उपाय के रूप में भोजन करना ही छोड़ देना वैरागियों का मार्ग है। हमारा मार्ग है समत्व और आसक्तिहीनता।

बहुत अधिक खाना शरीर को भारी और स्थूल बना देता है, बहुत थोड़ा खाना उसे दुर्बल और संक्षोभ्य बना देता है। मनुष्य की शारीरिक आवश्यकता और भोजन की मात्रा के बीच सच्ची समस्वरता और संतुलन प्राप्त करना होगा।

यह इस पर निर्भर करता है कि तुम कितना पचा सकते हो। यदि तुम पचा सकते हो तो ज्यादा खाने में कोई हर्ज नहीं, क्योंकि तुम्हें भूख लगती है। ये सारी बातें इस चीज पर निर्भर करती हैं कि शरीर की सच्ची आवश्यकता क्या है और यह मनुष्यों के शरीर की गठन तथा जितना काम या व्यायाम वह करता है उसके अनुसार विभिन्न मनुष्यों में भिन्न-भिन्न हो सकती है।

यह ऐसा योग नहीं है जिसमें शारीरिक तपश्चर्या को तपश्चर्या के लिए करना आवश्यक होता है। निद्रा शरीर के लिए उसी तरह आवश्यक है जिस तरह भोजन। यथेष्ट नींद अवश्य लेनी चाहिए, परन्तु अत्यधिक नहीं। कितनी निद्रा यथेष्ट होगी यह शरीर की आवश्यकता पर निर्भर करता है।

—योगी श्री अरविन्द

आश्रम पर गुरु-पूर्णिमा महोत्सव का आयोजन ३० जौलाई, ७७ को होगा।

Sidhayoga

Regd No. L. Ag. 006

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्ध योग

[illegible]

स्वधर्म का निश्चय कैसे करें ?

[illegible]

—आचार्य श्री विनोबा

मुद्रक— [illegible] शर्मा 'विनय' [illegible] प्रिंटिंग प्रेस, [illegible] आगरा-२